R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

जनवरी 2015

अंक 12

तपोभूमि

मासिक

श्री कृष्णवीर जी शर्मा द्वारा निर्मित यज्ञशाला का उद्घाटन करते हुये
योगगुरु स्वामी रामदेव जी महाराज साथ में श्री कृष्णवीर जी शर्मा

श्री गुरु विरजानन्द आश्रम वेद मन्दिर मथुरा में चतुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

(पूज्य स्वामी रामदेव जी महाराज द्वारा यज्ञशाला का लोकार्पण)

श्री गुरु विरजानन्द आश्रम वेद मन्दिर मथुरा का गतवर्षों की भाँति इस वर्ष भी 6 दिसम्बर से लेकर 25 दिसम्बर 2014 तक चतुर्वेद पारायण यज्ञ का समायोजन पूर्ण श्रद्धा के साथ सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ में यथासमय दूर-दूर से यजमानों ने सम्मिलित होकर अपने जीवन को सार्थक किया। प्रतिदिन प्रातः 8 से 11और सायं काल 2 से 5 बजे तक यज्ञ का क्रम निरन्तर चलता रहा। साथ में प्रवचन व भजन का भी कार्यक्रम निरन्तर चला। महाशय देवीसिंह जी अकबरपुर-मथुरा, महाशय बाबूलाल जी, महाशय कमलदेव जी अकोश-मथुरा, कुँवर उदयवीरसिंह जी उसपार-मथुरा, व बहन कुसुमलता जी सदर बाजार मथुरा के भजन व प्रवचन होते रहे। आचार्य ब्रजेश जी गोवर्धनपुर-अलीगढ़ के भी प्रवचन हुए।

गत कई वर्षों से वेदमन्दिर में चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन होता रहा है। यज्ञ के लिए कोई स्थायी यज्ञशाला का प्रबन्ध नहीं था। कपड़े का टेन्ट लगाकर ही यज्ञ का आयोजन होता रहा। गतवर्ष यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए योग गुरु पूज्य रामदेव जी महाराज पधारे तब उन्होंने एक भव्य यज्ञशाला की आवश्यकता पर बल दिया, उन्होंने कहा जब इतने बड़े-बड़े यज्ञ यहाँ होते हैं, तो याज्ञिकों की सुविधा को देखते हुए यज्ञशाला अवश्य होनी चाहिए। उनकी इस प्रेरणा से उनके अनन्य भक्त श्री कृष्णवीर जी शर्मा सिमरौठी (अलीगढ़) वाले जो वर्तमान में फरीदाबाद (हरियाणा) में निवास करते हैं। उन्होंने व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोज शर्मा ने संकल्प लिया कि वेदमन्दिर में एक भव्य यज्ञशाला का निर्माण अवश्य करायेंगे। इस वर्ष ईश्वर की परमानुकम्पा से उनका यह संकल्प पूरा हुआ। भव्य यज्ञशाला वेदमन्दिर में बनकर तैयार हो गई। जैसाकि उनके मन का विचार था कि यज्ञशाला का उद्घाटन स्वामी रामदेव जी महाराज के करकमलों द्वारा हो। पूज्य स्वामी रामदेव जी महाराज भी उनकी भावना के अनुसार इस यज्ञ में दिनांक 17 दिसम्बर को पधारे और यज्ञशाला का सभी याज्ञिकों की उपस्थिति में वेदमंत्रों की गुंजार और गुरु विरजानन्द जी व महर्षि दयानन्द जी जय-जयकार के बीच उद्घाटन किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने श्री कृष्णवीर जी शर्मा और उनकी धर्मपत्नी सरोज शर्मा को इस पुण्य कार्य के लिए आशीर्वाद और धन्यवाद दिया। शर्मा जी ने भी उद्घाटन के अवसर पर स्वामी जी के पधारने पर उनका आभार व्यक्त किया। इस अवसर पर बोलते हुए स्वामी जी ने 25 वर्ष पहले वेदमन्दिर में अपने निवास के समय की यादों को ताजा किया और वेदमन्दिर की उत्तरोत्तर प्रगति की आशा व्यक्त की।

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–60 संवत्सर 2071 जनवरी 2015 अंक 12

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जनवरी 2015

सृष्टि संवत्
1960853115

दयानन्दाब्द: 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–12
श्रद्धात्रय तथा मोक्ष संन्यास योग	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	13–15
इस्लाम कैसे फैला	–प्रीतम अमृतसरी	16–18
पिता का पुत्री को उपदेश	–स्वामी सदानन्द	19–21
प्रेम का महत्व	–मैथिलीशरण गुप्त	22–23
लोह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी	–स्वामी सदानन्द सरस्वती	24–26
सृष्टि–प्रलय–संवत्सरादि काल गणना	–महात्मा ओममुनि	27–30
अप्रिय अवस्थाओं से निकलने का मार्ग	–दयाचन्द्र गोयलीय	31–34

❁ ❁ ❁

वार्षिक शुल्क 150/ पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

अन्तरिक्ष–मार्गों से व्यापार

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।।–अथर्व0 3.15.2

शब्दार्थ:–

(ये) जो (देवयाना:) व्यापारियों द्वारा आवागमन करने योग्य (बहव: पन्थान:) बहुत–से मार्ग (अन्तरा द्यावापृथिवी) द्युलोक एवं पृथिवीलोक के मध्य अर्थात् अन्तरिक्ष में (सं चरन्ति) चल रहे हैं, (ते) वे (मा जुषन्ताम्) मुझे प्राप्त हों, (यथा) जिससे (पयसा घृतेन) दूध और घी के बदले (क्रीत्वा) खरीद कर (धनम्) धन (आहराणि) लाऊँ।

भावार्थ:–

मेरे राष्ट्र में चातुर्वर्ण्य का विकास है। ब्राह्मण विद्यादान करते हैं, क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहते हैं, वैश्य कृषि, पशुपालन एवं व्यापार द्वारा अपनी तथा समाज की सम्पत्ति बढ़ाते हैं, शूद्र सेवा में तत्पर रहते हैं। मैं वैश्यों का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। मैं खेती की भूमि में अन्न की फसलें पैदा करके उनसे अपने देश में तथा अन्य देशों में व्यापार करता हूँ। अपने देश में जिन्हें अन्न, फल, दूध, घी की आवश्यकता होती है, उन्हें ये वस्तुएँ पहुँचाता हूँ और बदले में चाँदी, सोना, रुपये, अशर्फी आदि धन ले लेता हूँ। मेरा प्रयत्न यह रहता है कि अधिक–से–अधिक मात्रा में ये वस्तुएँ उत्पन्न करूँ। अपने देश में व्यापार के बाद भी ये वस्तुएँ मेरे पास बची रहती हैं, अत: मैं बड़े स्तर पर विदेशों से भी व्यापार करना चाहता हूँ। समुद्रमार्ग से जलपोतों द्वारा विदेशों में यह सामग्री पहुँचाता हूँ। आवश्यकता यह अनुभव हो रही है कि आकाशमार्ग से भी ये सब वस्तुएँ विभिन्न देशों में भेजने की सुविधा हमें प्राप्त हो, जिससे अल्प समय में ही हमारे उत्पन्न किये हुए अन्न, फल, दूध, घी आदि पदार्थ विदेशों में पहुँच सकें। हवाई–यात्रा का प्रबन्ध हमारे राष्ट्र में पहले से ही है। इससे हमारे देश के यात्री शीघ्र दूसरे देशों में पहुँच सकते हैं और दूसरे देशों के यात्री हमारे यहाँ आ सकते हैं। देश के हवाई–यात्रा–विभाग ने द्यावापृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष में अनेक मार्ग निर्धारित किये हुए हैं, जिनसे निरन्तर आवागमन होता रहता है। कुछ अंशों तक व्यापार के लिए भी ये मार्ग खुले हुए हैं। किन्तु हम चाहते हैं कि इन मार्गों का उपयोग व्यापार के लिए और भी अधिक होने लगे। हम अन्न, फल, दूध, घी तथा अन्य विविध वस्तुएँ विमानों द्वारा दूसरे देशों में पहुँचाएँ तथा वहाँ जिन वस्तुओं का प्रचुरता से उत्पादन होता है, किन्तु हमारे देश में जिनकी कमी है, उन वस्तुओं को विमानों द्वारा अपने देश में लायें। यदि हमारा देश इतना उन्नत हो जाये कि सब पदार्थों का उत्पादन हमारे यहाँ ही होने लगे, तब हम अपने पदार्थ दूसरे देशों में बेचकर वहाँ से मुद्रा लायें। ❋❋❋

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

एकादशः सर्गः

चिदानन्दं ब्रह्माजरममरमीशं यतिपतिं शरण्यं विश्वेषां गुरुवरवरेण्यं श्रुतिकृतम् ।
अहं त्वामेम्यस्मात्सकलजनपातारममलं सदा शुद्धात्मानं शरणमघहरिन् कुरु दयाम् ॥ 25॥

हे पापों के विनाशक सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्। आप अजर, अमर, नित्य, शुद्धबुद्ध, वेदोत्पपादक, संसार के महान् गुरु एवं महान् रक्षक हो। आप दया करके शरणार्थी इस जनकी रक्षा कीजिये ।। 25॥

जगन्नाथानाथं लसदमलकीर्त्ते कविपते ! निदानं संसारस्थितिविलयसर्गस्य बुधराट् ।
इमं संसाराम्भोनिधिसमयनक्रैः कवलितं पितस्त्रायस्व त्वं त्रिभुवनपते दुःखनिधितः ॥ 26॥

हे जगन्नाथ त्रिभुवनपते ज्ञानस्वरूप पिता, आपकी शुद्धकीर्ति संसार में चमक रही है। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आप ही एक मात्र कारण हैं। संसार के दुःखसागर में कालरूपी मगरमच्छों से ग्रसित इस भक्तजन की आप रक्षा कीजिये ॥ 26॥

मनोगताज्ञानतमांसि नाशयन् नृणां सुकर्माम्बुरुहाणि हासयन् ।
द्विजावलीवर्णितवर्णमण्डलः कवीन्द्रकर्णाभरणाग्रकुण्डलः ॥ 27॥
अनन्तलोकान्तरलोकलोचनोभयंकराघावलिदुःखमोचनः ।
कलाग्रविद्यागुणरत्नसागरोविराजते भूदिवि वेदभास्करः ॥ 28॥

ईश्वरस्तुति के पश्चात् ऋषिवर वेदस्तुति करने लगे। अहा ! भारतवसुन्धरा के आकाश में वेदभास्कर उदित हो रहा है, जो हृदय के अज्ञानान्धकार को नाश कर के मनुष्यों के सत्कर्मरूपी कमलों को विकसित करता है। विप्रगणरूपी विहंगामाला से सूर्यसम वेदभगवान् का यशोगान किया जा रहा है। भगवान् वेदभास्कर कवीन्द्रगण के लिये कर्णाभरण हैं। अनन्त लोकलोकान्तरों की जनता का यह वेद–सूर्य ज्ञानचक्षु है, भयंकर पापपुंज के दुःख का संहारक है। उत्तम विद्या, कला आदि गुणरत्नों का रत्नाकर है ॥ 27–28॥

महेश्वरान्तःकरणाब्धिचन्द्रिका सरस्तनुर्योगिविहंगमाश्रया ।
सुमन्त्रमुक्ताशनहर्षितात्मभिर्मनीषिहंसैरनिशं निषेविता ॥ 29॥
सुसभ्यतासंस्कृतिनिर्गमेन्द्रदिक् सुधर्मगंगासलिलोदगमस्थली ।
मनोज्ञयज्ञद्रुमनन्दनावनी न कस्य वन्द्या जननी श्रुतीश्वरी ॥ 30॥

महेश्वर के हृयसागर की चन्द्रिकास्वरूपा, योगीरूप पक्षियों की शरणदात्री सरसी (तालाब) सी,

सुन्दर मंत्ररूपी मोतियों के आस्वादन से प्रसन्नात्मा मनीषी–हंसों से निरन्तर सेविता, उत्तम सभ्यता एवं संस्कृति के उदय की पूर्वदिशा, श्रेष्ठ धर्मरूपी गंगा की उद्गमस्थली, मनोहर यज्ञरूपी वृक्षों के लिये नन्दनवाटिका सी ऐश्वर्यवती भगवती श्रुतिमाता किसके लिये वन्दनीय नहीं है ? ॥ 29–30॥

संजीवनौषधिलतेव गुणाभिरामा संसारतापगदभक्षणदक्षवीर्या ।
देवासुरैः सुमनुजैः सममेव सेव्या लोकोपकारकरणाय धृतवतारा ॥ 31॥
विद्यापयोधरवतीव पयस्विनीयं विज्ञानदुग्धपरिपुष्टबुधाभिवन्द्या ।
श्रीब्रह्मणा विरचिता प्रतिसर्गवेलं वेदेश्वरी विजयते निखिलेष्टदात्री ॥ 32॥

गुणशालिनी संजीवनी औषधि की लतासी, संसार के तापत्रय और रोगों के नाश करने में अमोघ वीर्यवती, देवों, असुरों एवं मनुष्यों से समानरूप ही सेवनीय, मानों लोकोपकार के लिये ही चतुर्विध रूप धारिणी, विद्यारूपी दूध को धारण करनेवाली कामधेनु सी, विज्ञानरूपी दुग्ध से परिपुष्ट विद्वज्जनों से वंदनीय, प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मदेव से प्रकट होने वाली, सम्पूर्ण सिद्धियों की दात्री, भगवती वेदमाता का जयजयकार हो रहा है ॥ 31–32॥

स्मृतीनां सर्वस्वं भवजलधिगानां ससुतणिः शरण्या पुण्यानां सुविमलमतीनां गलमणिः।
सुविद्यारत्नां खनिरशनिरेषाऽनृतजुषां गिरां भूषा कर्णाभरणमिह माता श्रुतिरहो ॥ 33॥

अहा ! श्रुतिमाता समग्र स्मृतियों का सर्वस्व, संसार–सागर में निमग्न जन के लिये नौका, पुण्यों की शरणदात्री, पवित्र बुद्धिवालों की कण्ठमाला, श्रेष्ठ विद्यारत्नों की खान, अनृतसेवियों के लिये वज्र, वाणी का अलंकार और कर्णों का आभरण है ॥ 33॥

यां गीर्वाणाः प्रकृतिविमलां सुन्दरीं सेवमानावाणीवीणां रणितनिगमां लीलयानन्दयन्तीम् ।
गायत्रीभिः सुभगमधुरं त्वामुलश्लोकयन्तीमानन्दन्ति प्रवरमतयस्तामहं नौमि देवीम् ॥ 34॥

वेदस्तुति के पश्चात् ऋषिवर सरस्वती–विद्यादेवी की वन्दना करते हैं:

सरस्वती स्वभाव से निर्मल, एवं सर्वोपरि सुन्दर है, यह वाणीरूपी वीणा से स्वाभाविक रूप से वेदों को गाती हुई गायत्री आदि छन्दों द्वारा सुभग मधुर ईश्वर की स्तुति करती है। इस सरस्वती की सब देवगण उत्कृष्ट बुद्धि की प्राप्ति के लिये सेवा करते हैं। उसी सरस्वती की मैं भी स्तुति करता हूँ ॥ 34॥

सरस्वति कथं स्तवं रचयितुं तवाहं प्रभुः प्रभूतमसकृद् यतोऽसि निगमैस्सुगीतस्तवा ।
तवांघ्रियुगलारविन्दमकरन्दवृन्दं सदा सदानतसुरै र्मुदा रसयितुं मिलिन्दयितम् ॥ 35॥

हे देवी वाणी, मैं तेरी स्तुति करने में कैसे समर्थ होऊँ ? जब कि अखिल वेद बारंवार अनेकों मंत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं और विनम्र देवगण आनन्द से तुम्हारे चरणारविन्द के मकरन्द का भ्रमर बनकर निरन्तर पान करते हैं ॥ 35॥

वन्दारुवृन्दारकवन्दनीये ! योऽयं प्रयासः स्तवने त्वदीये ।
भक्तेः प्रकाशाय मनोरमायाः शक्ते र्विकासाय मनोहरायाः ॥ 36॥

वंदनशील देवगणों से वन्दनीय हे सरस्वती, तुम्हारी स्तुति के लिये जो मेरा यह प्रयत्न है, वह केवल मेरी हार्दिक भक्ति के प्रकाश एवं शक्ति के विकास के लिये है ॥ 36॥

जयदेवि! दिव्यसरस्वति! प्रभुवक्त्रपंकजसम्भवे ! कविहंसकुलकुलदेवते! श्रुतितन्त्रमन्त्रसहोद्भवे! ।
भवसौख्यसिन्धुतरंगिणी नवनव्यमंगलकारिणी ! जनतापपापविनाशिनी जनतानतान्तरनन्दिनी ॥ 37॥

हे देवि दिव्य सरस्वती, हे प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न वाणी ! हे कविश्रेष्ठों की कुलदेवता ! वेदशास्त्रों के मंत्रों की सहोदरा ! तुम सुखसागर की ओर ले जाने वाली नदी हो, नये-नये मंगलों को करने वाली हो, मनुष्यों के संताप एवं पापों का विनाश करने वाली हो, और भक्तिनम्र जनता के मन को प्रसन्न करने वाली हो ॥ 37॥

वाग्देवि ! त्वं ललितललितं मंजुलं निक्वणन्ती पाणौ वीणामिव नु दधती पंचमं वादयन्ती ।
वाग्भिर्भासि श्रवणसुभगं नैगमीभिः सुधां तां सिंचन्ती मे हृदि नु सततं नन्दयन्ती मनो मे ॥ 38॥

हे वाग्देवी ! तुम अतिसुन्दर कर्णसुखकारी आवाज करती हुई, मानों हाथों में वीणा धारण कर पंचम राग अलापती हो, और मंत्रमयी वाणी से मेरे हृदय में अमृत सिंचन कर, निरन्तर मन को आनन्द प्रदान करती हुई प्रकाशित रहती हो॥ 38॥

शैलेन्द्रादिव शास्त्ररत्नभवनान्मन्दाकिनी पावनान्मन्द्रामन्दमियं यथामृतकुलैरालहादयन्ती भुवम् ।
अस्माकं हृदयं वचोभिरमलै र्विख्यातहंसादृता मातर्देवि सरस्वति प्रवहसि प्राग्वेद वेदादहो ॥ 39॥

हे माता सरस्वती देवी ! जैसे गंगा, रत्नां के आकर पावन शैलंराज से निकलकर अपने निर्मल जल से पृथ्वी को पवित्र करती हुई, अपने तटवर्ती हंसों से सम्मानित हो गम्भीरतापूर्वक निरन्तर बहती रहती है, वैसे ही तुम शास्त्रों के भंडार पवित्र वेदों से निकलकर पवित्र वचनामृत से जनता के हृदय को आनन्दित कर परमहंस परिव्राजकों से आदर पाती हुई अनादिकाल से मानव हृदयरूपी भूमि पर बह रही हो ॥ 39॥

वेदा एते ब्रह्मणो ब्राह्मि देवि ! त्वं वेदेभ्योऽजायथा अम्ब नूनम् ।
त्वत्तस्सर्वा व्यर्थगर्वाचिंतास्ताभाषा जाताश्चित्रमेता विचित्राः ॥ 40॥

हे ब्राह्मीदेवी ! ये वेद ब्रह्मा से उत्पन्न हुए और हे माता, तुम वेदों से उत्पन्न हुई हो, एवं तुम से ये सारी भाषायें पैदा हुई हैं, तो भी आश्चर्य है कि ये भाषायें व्यर्थ ही अपने भिन्न अस्तित्व का गर्व धारण कर रही हैं ॥ 40॥

योगिज्ञानीन्द्रकर्मीश्वरहृदयभुवं पावयन्ती पवित्रैः कर्मज्ञानोत्तमोपासनविषयजलै र्ब्रह्मणो निःसरन्ती।
मातर्गीर्वाणवाणि! प्रकटकलरवा प्रोल्लसत्कीर्त्तिचन्द्रा नूनं गंगा त्रिलोक्यां प्रवहसि तिसृभिः स्रोतसां पंक्तिभिस्त्वम् ॥ 41॥

हे ब्रह्मसुता माता गीर्वाणवाणी ! तुम योगियों, ज्ञानियों और कर्मकाण्डियों के हृदयस्थल को पवित्र उपासना, ज्ञान और कर्मरूप पवित्र जलों से पावन करती हुई, तीनों लोकों में तीन धाराओं द्वारा कलकल मधुर ध्वनि करती हुई, अपनी कीर्ति-चन्द्रिका को छिटकाती हुई सचमुच त्रिपथगा गंगा ही हो ॥ 41॥

क्वचिद्गम्भीरान्तर्गहनविषयाच्छादिततटी जटीन्द्रैर्धीव्यैरसकृदवगाढाऽऽमिषफलम्।
क्वचिन्मन्दस्नेया विशदरसरम्या रुचिकरा स्रवन्तीवाम्ब त्वं जयसि विबुधानन्दिनि सदा॥ 42॥

हे देवरूपी हँसों की आनन्ददायिनी गंगासदृशी माता सरस्वती ! कहीं–कहीं गंभीर और गहन विषयरूपी जलों से पूर्ण तटवाली, इसलिये जटाधारी विद्वानरूपी धीवरों से निरन्तर तत्वरूपी मांस की प्राप्ति के लिये आलोकित होनेवाली और कहीं–कहीं साधारण बुद्धिवालों से अवगाहन करने योग्य, स्पष्ट नवरसरूपी जल से सुन्दर एवं रुचिकर होने से तुम विजयशालिनी हो ॥ 42॥

आरुह्याम्ब प्रतनुविमलं शेमुषीनौविमानं त्वकल्लोलामृतजलकुलेऽमन्दमान्दोल्यमानम्।
त्रैलोक्यस्थो मुनिवरगणो देवि कैवल्यकामः सौख्याम्भोधिं गुणामणिनिधिं विन्दते देवदेवम्॥ 43॥

हे देवि ! तीनों लोगों के मुमुक्षु देवगण, सूक्ष्म एवं विमल बुद्धिरूपी नौ–विमान पर चढ़कर विचाररूपी तरंगों के अमृतमय जलप्रवाह में अवगाहन करते हुए, गुणरूपी रत्नों के निधि, सुख के सागर, देवाधिदेव को प्राप्त कर लेते हैं॥ 43॥

दोधूयन्ते दिशि विदिशि ता वैजयन्त्यो बुधेन्द्रैर्वाङ्माधुर्याप्लुतसुहृदयैस्त्वत्पदाम्भोजभृगैः।
सान्द्रश्रद्धाभरितवचसा कीर्त्तयभिदस्त्वदीयां सम्पूर्णेन्दुप्रतिमधवलां कीर्त्तिमम्ब प्रकीर्त्त्याम्॥ 44॥

हे माता ! तुम्हारी वाणी की मधुरता से तरंगित–हृदय, तुम्हारे चरणकमल का भ्रमर सम विद्वान्गण, गाढ़ भक्ति से सने वचनों द्वारा, तुम्हारी पूर्णचन्द्रतुल्य शुभ्र कीर्तिनीय कीर्त्ति का कीर्त्तन करता हुआ सब दिशाओं में विजय वैजयन्ती फहरा रहा है॥ 44॥

रुचिगुणमणीनां कान्तिभी राजमानं नवनवरसवृन्दैश्चान्दनैः सिच्यमानम्।
जननि तव सुधाक्तं सुन्दरं मन्दिरं ते कविकृतकलगीतं प्राप्य नन्दन्ति देवाः॥ 45॥

हे जननी ! सुन्दर ओज आदि गुणरूपी मणियां की कान्ति से जगमगाते हुए, आनन्ददायक नये–नये नवरसरूपी चन्दन रसों से अभिषिक्त अमृतरूपी चूने से पुते हुए, कविजनों के मधुरगीतों से गुंजित तेरे सुन्दर मन्दिर को पाकर विद्वन्मण्डल प्रसन्न हो रहे हैं॥ 45॥

त्वसाहित्यसुधापगातटभुवं श्रित्वा बुधेन्द्रा न के वेदान्तोपनिषद्वचः सुमनसां किंजल्कजालान्वितम्।
मातर्वान्तममन्दशान्तिपवनं संसेवमानाः सदा स्वात्मानन्दरता भवार्त्तिरहिता भृता भवन्त्यंजसा॥ 46॥

हे माता ! तेरे साहित्यरूपी देवगंगा (अमृतनदी) के तट का आश्रय लेकर, सदा वेदान्त और उपनिषदों के सूक्ति–सुमनों के पराग से सुगन्धित शीतल मन्द समीर का सेवन करते हुए, कौन विद्वान् जल्दी ही संसारताप से मुक्त एवं आत्मानन्द में मस्त नहीं हुए, न होते हैं, न होंगे ? ॥ 46॥

अये मातर्वाणि त्वमिव जयसि त्वं त्रिभुवने गिरां वारां धारां वरममृतभाजां जलमुचाम्।
प्रवर्षन्ती माला हृदयसरसीं तापलुलितां निदाघान्ते तासामहह शमयन्तीव नृभुवाम्॥ 47॥

हे माता वाणी ! तीनों भुवनों में अकेली तुम ही अपने जैसी विजयिनी हो तुम्हारी उपमा तुम ही हो। जैसे ताप से संतप्त पृथिवी पर अमृतजल बरसाने वाली मेघामाला ग्रीष्मऋतु के अन्त में प्रकट होकर, जल बरसा कर सरोवरों को तृप्त एवं शान्त कर देती है; वैसे ही तुम त्रिविध ताप संतप्त जनता के हृदय को अमृतमयी वाणी से तृप्त एवं शान्त कर देती हो॥ 47॥

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे –

योगेश्वर कृष्ण

महाभारत का युद्ध-प्रकार

लेखकः पं. चमूपति

परिघ– डंडा जिसकी शाम लोहे की हो, या जो लोहे से मढ़ा हो।

भिन्दीपाल– बड़े फलवाला कुन्त (बरछा)।

मुशल– खैर का शूल। (भीष्मपर्व 73, 3)

कर्णी– काँटेदार तीर।

नालीक– छोटा तीर। इसकी नोक के साथ दो उलटे काँटे लगे होते थे जिससे यह शरीर में घुसकर फिर निकल न सकता था।

नाराच– लोहे का तीर। इसे तैल-धौत अर्थात् तेल से साफ किया गया लिखा है। (भीष्मपर्व 106, 13)

शर– सरकण्डे का तीर। इसकी नोक लोहे या हड्डी की होती थी।

क्षुरप्र– चपटे मुँह का तीर। किसी दूर खड़े शत्रु का कोई अंग काटना हो तो इसका प्रयोग होता था। अर्जुन ने भूरिश्रवा की भुजा क्षुरप्र से ही काट दी थी।

शिलीमुख– तीर।

चक्र– यह हथियार श्री कृष्ण का विशेष था। अन्य लोग भी इसका प्रयोग तो करते हैं, परन्तु कृष्ण सम्भवतः इसके उस्ताद थे। यह फेंका हुआ लौट आता था। कहते हैं आस्ट्रेलिया का बूमिराग भी इसी प्रकार लौट आता है।

पट्टिश– लोहे के डंडे की तेज धार वाली बर्छी। कौटिल्य के टीकाकार ने पट्टस का अर्थ "उभयान्तत्रिशूलक्षुरकल्पः" लिखा है।

कामुर्क– ताल की लकड़ी का धनुष।

खड्ग– तलवार। गैण्डे के सींग का हत्था। खड्ग के हत्थे हाथी-दाँत के भी लिखे हैं।

चाप– एक विशेष प्रकार के बाँस की कमान। एक स्थान पर इसका पृष्ठ सोने का लिखा है। (भीष्मपर्व 103, 22-25)

शतघ्नी– (1) प्रकार पर धरा एक स्तम्भ, जिसमें सब ओर से लम्बे-मोटे कील निकले रहते थे, और जिसके सिरों पर पहिये लगे होते थे। (2) कीलों से आच्छादित चार ताल लम्बा पत्थर। (3) एक

प्रकार का फेंकने का हथियार।

परश्वध– फरसा। कुल्हाड़े के रूप का हथियार।

मुद्‌गर– लकड़ी या लोहे का मूसल।

कम्पन– फेंकने का एक हथियार।

वत्सदन्त– एक प्रकार का तीर।

भुषुण्डी– फेंकने का एक हथियार।

अशनि– वज्र। यह भी एक फेंकने का हथियार है। इसे अष्टचक्रयुक्त कहा है। घटोत्कच ने कर्ण पर अशनि छोड़ी थी। उसने इसे रोककर लौटा दिया। वह शत्रु के घोड़ों, रथ आदि को भस्म कर पृथिवी में जा धँसी।

लगुड– मोटा लट्‌ठ। गदा।

निस्त्रिश– टेढ़े फल की तलवार।

शूल– तेज नोंक का भाला।

क्षुर– छुरा।

विशिख– तीर।

कुन्त– पाँच, छः या सात हाथ की काँटेदार बरछी।

भल्ल– फेंकने का अर्धचन्द्राकार हथियार।

अंजलिक– अर्जुन का बाण–विशेष।

विपाट– लम्बा तीर।

वज्र– अशनि।

पाषाण– अश्मगुड़, पत्थर की गोलियाँ। पहाड़ी सेनाओं को अश्म–युद्ध में प्रवीण कहा गया है। लिखा है–और लोग ये युद्ध नहीं कर सकते। (द्रोणपर्व 37, 24)। कौटिल्य में यन्त्रगोष्पण और मुष्टि पाषाणों के फेंकने के साधन बताए गए हैं।

स्थूण– स्तम्भ।

योद्धा लोग अपनी रक्षा के लिए कवच पहनते थे। ये लोहे तथा काँसे के होते थे। हाथ में ढाल रहती थी। सिर पर शिरस्त्राण, हथेली पर तलत्र और अंगुलियों पर अंगुलित्र बाँधते थे। दस्ताने (अंगुलित्र) का विशेषण एक स्थान पर गोधा–चर्ममय लिखा है अर्थात् वह गोह के चमड़े का होता था।

घोड़ों की छाती पर उरश्छद कमर पर कक्षा, पूँछ पर पुच्छत्र, गले में योक्तृ तथा और कहीं आपीड़ रहते थे। हाथी के ऊपर परिस्तोम अर्थात् झूल होती थी। यह चमड़े की भी होती थी, कपड़े की भी। अंकुशों में मणियाँ जड़ी रहती थीं। गले में घण्टे बँधे रहते थे। रथों में घुँघरू बँधे रहते थे।

उपर्युक्त हथियार तो कुछ ऐसे हैं जिनका आकार तथा प्रयोग–प्रकार स्पष्ट समझ में आ जाता है। इनके अतिरिक्त अस्त्रों का वर्णन आया है। वे हमारे लिए दुर्बोध हैं। उनका प्रयोग मन्त्र–शक्ति–द्वारा

होता था। मुख्य अस्त ये थे–

ब्रह्मास्त्र– इसमें धनुष पर ही मन्त्र–शक्ति का प्रयोग किया जाता था। इससे असंख्य तीर एकसाथ छूटते और शत्रु को नष्ट करते थे। अभ्यस्त योद्धा कई तीर एक–साथ यों भी चला लेता था, यथा–भीम के सात तीर इकट्ठे और वे भी भिन्न–भिन्न शत्रुओं पर छोड़ने का उल्लेख है। सम्भवतः वे एक–दूसरे के पीछे इतनी शीघ्रता से छूटे होंगे कि साधारण भाषा में उन्हें एकसाथ छूटा कहना अत्युक्ति न समझा जाय। परन्तु ब्रह्मास्त्र इससे भिन्न है। प्राजापत्यास्त्र भी सम्भवतः ब्रह्मास्त्र का दूसरा नाम हो।

ऐन्द्रास्त्र– अलम्बुष राक्षस की माया को सात्यकि ने इस अस्त्र द्वारा भस्म किया।

सौरास्त्र– अलम्बुष ने अपनी माया से अँधेरा कर दिया। उसे अभिमन्यु ने सौरास्त्र द्वारा हटाया।

त्वाष्ट्रास्त्र– अर्जुन ने इसका प्रयोग संशप्तकगण पर किया। वे एक–दूसरे को अर्जुन समझ आपस में ही संहार करने लगे। इसी अस्त्र से हजारों वीर पैदा होने की बात भी आगे आई है।

आग्नेयास्त्र– यह आग लगाता और वरुणास्त्र उसे बुझा देता था। द्रोण के शिक्षणालय ही में अर्जुन वारुणास्त्र का प्रयोग गुरु का कमण्डलु शीघ्र भर देने के लिए करता था। इससे वह अपने सहपाठियों से पूर्व लौट आता और विद्याभ्यास के लिए अधिक समय प्राप्त कर लेता था। जयद्रथ–वध के दिन रथ के घोड़े थक गए तो उन्हें पानी पिलाने के लिए अर्जुन ने वारुणास्त्र द्वारा तालाब खोद दिया। वह केवल पानी से ही न भर गया, अपितु उस पर तत्काल कमल, कमलिनियाँ और हंस, कारण्डव आदि पक्षी भी उपस्थित हो गए। शर–शय्या पर पड़े भीष्म को पानी भी अर्जुन ने इसी वारुणास्त्र–द्वारा पृथिवी से फौवारा–सा चलाकर पिलाया था।

नागास्त्र– इसके चलाने से सारे शत्रुओं पर साँप लिपट जाते थे। अर्जुन ने इसका प्रयोग संशप्तकों पर किया था।

सौपर्णास्त्र– नागास्त्र का प्रतिकार सौपर्णास्त्र द्वारा किया गया।

नारायणास्त्र– द्रोणाचार्य के मरने पर अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र चलाया। उससे हजारों की संख्या में दीप्ताग्र बाण चलाया। उससे हजारों की संख्या में दीप्ताग्र बाण प्रकट हुए। वे जलते हुए मुखोंवाले साँपों की तरह पाण्डवों का नाश करते प्रतीत होते थे। फिर कार्ष्णायस के गोले निकले। वे स्वच्छ आकाश में तारों की तरह चमक रहे थे। फिर चार–चार चक्रोंवाली शतघ्नियाँ और गोले तथा क्षुरान्त–चक्र सूर्य–मण्डलों की तरह घूमने लगे। ज्यों–ज्यों पाण्डव लोग लड़ते थे, त्यों–त्यों यह अस्त्र बढ़ता जाता था ......इसका प्रतिकार श्री कृष्ण ने बताया। वह यह कि सब लोग शस्त्र डालकर घोड़ों, हाथियों तथा रथों से उतर जाएँ। पृथिवी पर खड़े न्यस्तशस्त्र मनुष्य का यह अस्त्र कुछ न बिगाड़ेगा। (द्रोण 200, 16–21, 38)

ब्रह्मशिरा– युद्ध के समाप्त होने पर अश्वत्थामा ने एक सींक पर मन्त्र–शक्ति का प्रयोग कर यह अस्त्र चलाया। अर्जुन ने भी इसके उत्तर में अस्त्र चला दिया। व्यास के कहने से अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया, परन्तु अश्वत्थामा में लौटाने की शक्ति न थी। उसका अस्त्र उस समय रुक गया, परन्तु उसका फल आगे चलकर यह हुआ कि उत्तरा के पेट से जो पुत्र पैदा हुआ वह मरा हुआ था।

हमने इन अस्त्रों का वर्णन महाभारत के अपने शब्दों में दे दिया है। ''मातृविलास'' नामक पुस्तक में इन अस्त्रों की व्याख्या गायत्रीमन्त्र के अक्षरों के उलटे-सीधे क्रम में लाखों-करोड़ों बार जाप के रूप में की है। इस जाप से योद्धा में अलौकिक शक्ति आ जाती है। 'महाभारत' में इस नियम का उल्लेख स्थान-स्थान पर हुआ है कि अस्त्र का प्रयोग अनस्त्रवित् पर नहीं करना चाहिए। द्रोणाचार्य का एक अपराध इस अस्त्र-विद्या के न जाननेवालों में इन अस्त्रों का चलाना था। सम्भवतः इसी अपराध के कारण मृत्यु से पूर्व उसके अस्त्र फुरने बन्द हो गए थे। हो सकता है, इनमें से कुछ अस्त्रों में किसी यान्त्रिक विशेषता के कारण विशेष शक्ति आ जाती हो। ऐषीक तथा नारायण अस्त्र-जिन रूपों में उनका वर्तमान 'महाभारत' में वर्णन है-स्पष्ट काल्पनिक-कोई दिव्य से-हथियार हैं।

योद्धा लोग इन हथियारों-अस्त्रों तथा शस्त्रों-के प्रयोग से पूर्व, तथा इसका प्रयोग करते हुए प्रेरक ध्वनियों से खूब लाभ उठाते थे। प्रत्येक प्रमुख योद्धा का अपना शंख होता था। उसकी ध्वनि शत्रु के प्रति उसका आह्वान थी। दुंदुभि तथा भेरी की आवाज योद्धाओं को लड़ाई के लिए उकसाती थी। रथों में मृदंग बँधे रहते थे जो रथ की गति के साथ-साथ बजते थे। गोमुख, पणव और आनक भी इसी प्रकार के वाद्य थे। लड़ते समय योद्धा ताली बजाते थे। उनका 'तलस्वन' भयंकर होता था। इससे यह भी प्रतीत होता है कि उनके शस्त्र चलाने में संगीत के ताल की-सी समता रहती थी।

जयद्रथ-वध के दिन अर्जुन की सहायता के लिए सात्यकि को भेजने लगे हैं तो उसकी पूजा कन्याओं से कराई गई है। इससे युद्ध की प्रेरणा कितनी प्रबल और कितनी पवित्र हो जाती है, राखी-बँधा राजपूत ही इस रहस्य को समझ सकता है।

महाभारत की लड़ाई खुले मैदान में हुई थी। कई युद्ध दुर्ग-युद्ध होते थे। बड़े-बड़े नगर जिन्हें पुर कहते थे, दुर्ग ही हुआ करते थे। द्वारवती की रचना का वर्णन हम किसी पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उसे झण्डेवाली, फाटकोंवाली, योद्धाओंवाली, बुर्जोंवाली, यन्त्रोंवाली, सुरंग खुदाई की सामग्री से युक्त, लोहे के कीलोंवाली, गलियोंवाली, अट्टालिकाओंवाली, पुरद्वारवालों, मोर्चोंवाली, ज्वालाओं तथा अलातोंवाली, भेरियों, पाण्डवों और आनकोंवाली, तोमरों, अंकुशों, शतघ्नियों, भुषुण्डियों, पत्थर के गोलों, लोह-चर्मों (ढालों) वाली, आग और पिघले हुए गुड़ से युक्त शिखरोंवाली, और रथों इत्यादि वाली कहा गया है। यह भी लिखा है कि नगरी में बहुत से गुल्म अर्थात् बुर्ज थे। बीच के बुर्ज पर खड़े प्रहरियों ने शाल्व के आक्रमण का समाचार दिया था। इस समाचार के मिलने पर जो परिखाओं में कीलें बिछा देने आदि की तैयारियाँ की गई थीं, उनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं (वनपर्व 15-5-8)। शान्तिपर्व के 86वें अध्याय में भीष्म कहते हैं-दुर्ग में लोहे, काष्ठ, बुस (भुसा), अंगार (कोयला), दारु (लकड़ी), शृंग (सींग), अस्थि, वेणु (बाँस), मज्जा (चर्बी), स्नेह (तेल), वसा, क्षौद्र (शहद), औषध, शण, सर्जरस (चीड़ का बेरोजा), धान्य, शस्त्र, क्षार, चर्म, स्नायु, मुंज, बल्बज (घास), दंध्वन आदि के भण्डार रहने चाहिएँ और तालाब, बावलियाँ आदि रोक देनी चाहिएँ। इन सन्दर्भों से भी उस समय की युद्ध-शैली के एक विभाग पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

-(शेष अगले अंक में)

श्रद्धात्रय तथा मोक्ष संन्यास योग

लेखकः डॉ० सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

त्रिविध श्रद्धा–

16वें अध्याय के अन्त में नरक के तीन द्वार काम, क्रोध और लोभ हैं। यह उल्लेख करके शास्त्र विधि के अनुसार कर्म करना चाहिये, यह वर्णन किया था। इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन प्रश्न करता है कि श्रद्धापूर्वक कर्म करने से क्या फल मिलता है? उसको समझाते हुए श्रीकृष्ण श्रद्धा, आहार, यज्ञ, तप, दानादि के बारे में वर्णन करते हैं कि ये सभी त्रिविध अर्थात् तीन प्रकार के होते हैं। प्रकृति में **सत्व, रज, तम** तीन गुण हैं। प्रकृति से बने हुए इस विश्व में **तीन गुण** दीखते हैं। इसलिये आहार, यज्ञादि भी **त्रिविध** हैं। यही वर्णन इस अध्याय में किया गया है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! प्राणिमात्र की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है। श्रद्धा के ये तीन प्रकार उनके स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। सात्विक, राजसिक, और तामसिक तीन प्रकार की श्रद्धा होती है। सात्विक श्रद्धावाले **देवताओं** की, राजसिक श्रद्धावाले **यक्षों** और **राक्षसों** की पूजा करते हैं तथा तामसिक श्रद्धावाले **भूत, प्रेतों** की पूजा करते हैं। सात्विक श्रद्धा जिन लोगों में होती है वे देवताओं का अर्थात् जो समाज या मानव जाति को कुछ दे रहे हैं उनका सम्मान करते हैं, उनकी संगति करके जीवन में वे स्वयं भी दूसरों को कुछ देना चाहते हैं। राजसिक वृत्ति के लोग राक्षस अर्थात् दूसरों को परेशानी व दुःख देकर व्यवस्था या हुकूमत चलाते हैं या दूसरों के सुख दुःख का ध्यान न रखकर अपना स्वार्थ पूरा करनेवाले राक्षसी स्वभाववाले लोगों की तथा यक्ष अर्थात् धनवानों की पूजा सम्मान सत्कार या उनकी झूठी प्रशंसा करके उनसे अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। तमोगुणीं व्यक्ति भूत, प्रेतों की अर्थात् जिनकी समाज में कोई प्रतिष्ठा और इज्जत नहीं है। जिनका सारा सम्मान भूत अर्थात् चला गया है–ऐसे लोग जीते जी मरे हुए के समान हैं उनकी पूजा सम्मान करते हैं।

त्रिविध आहारः–

तीन प्रकार के आहार के बारे में लिखा है कि जो भोजन आयु, सात्विक वृत्ति, बल, आरोग्य सुख और उल्लास को बढ़ाते हैं जो भोजन रसयुक्त, स्निग्ध शरीर को स्थिर बनानेवाले रुचिकर होते हैं वे **सात्विक** वृत्तिवालों को प्रिय होते हैं। तथा कटु, खट्टे, तीखे और दुःख रोग आदि को उत्पन्न करनेवाले भोजन **राजसिक** वृत्तिवालों को और बासी, सड़े हुए, गन्दे और नीरस भोजन **तामसिक** वृत्तिवालों को प्रिय होते हैं।

त्रिविध यज्ञः–

यज्ञ भी तीन प्रकार के होते हैं जो मनुष्य यज्ञ के फल की आकांक्षा को छोड़कर यज्ञ करना मेरा धर्म या कर्तव्य है ऐसा समझकर शास्त्र में बतायी गयी विधि के अनुसार मन लगाकर जो यज्ञ किया जाता

है वह **सात्विक यज्ञ** है। फल की आकांक्षा का त्यागकर के यज्ञ का यजमान, मंत्र से आहुति देता हुआ बार-बार बोलता है **'इदं न मम'** इसके द्वारा ममत्व को, अहंभाव को सर्वथा समाप्त कर देता है और जहाँ ममत्व समाप्त होता है वही उसका कर्म परार्थ हो जाता है, वह अपने लिये नहीं अपितु दूसरों के लिये यज्ञ कर रहा है। जब शास्त्रविधि के अनुसार करते हुए यदि किसी लौकिक फल की प्राप्ति के लिये जब यजमान यज्ञ करता है तो वहां स्वार्थ आ जाता है और स्वार्थ के आते ही यज्ञ, सात्विक यज्ञ नहीं रहता, वह तो राजसिक यज्ञ हो जाता है। **राजसिक यज्ञ** के बारे में आगे लिखा है कि 'जो यज्ञ किसी फल की आकांक्षा को लेकर किया जाता है अथवा अपना धन वैभव एवं सांसारिक सम्पत्ति को दिखाने के लिये यज्ञ किया जाता है तो वह **राजसिक यज्ञ** होता है। तथा जो यज्ञ विधिपूर्वक न हो, जिसमें मन्त्रपाठ ठीक न हो तथा न दक्षिणा दी जाय और न ही भोजन कराया जाय, वह **तामसिक यज्ञ** होता है। अर्थात् जिन यज्ञों को मन माने ढंग से कर लिया जाय, मन्त्रों का शुद्ध आचरण न किया जाय, यज्ञ करानेवाले विद्वानों, पुरोहितों को दक्षिणा न दी जाय, आगन्तुकों को विद्वानों को भोजन न कराया जाय ऐसे यज्ञ तामसिक होते हैं। इन यज्ञों के करने से यज्ञ का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

तप का तात्पर्य एवं त्रिविध तपः-

तप या तपस्या के बारे में अनेक मिथ्या कल्पनाएं प्रचलित हैं, जैसे कोई **एक पैर पर खड़ा,** कोई भयंकर गर्मी में अपने चारों ओर **अग्नि जलाकर बैठा** तो भयंकर सर्दी में नदी में खड़ा या पानी में डुबकी लगाने को तप समझ रहा है किन्तु गीता में इसका यथार्थ विवेचन प्रस्तुत किया है। शारीरिक, मानसिक और वाचिक **तीन प्रकार के तप** का का उल्लेख किया है। शारीरिक तप के बारे में लिखा है कि देवताओं, ब्राह्मणों, गुरुओं और विद्वानों की पूजा करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसापूर्वक जीवन बिताना **शारीरिक 'तप'** कहलाता है। वस्तुतः अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो विघ्न और बाधाएं आती हैं उनको सहन करते हुए लक्ष्य को प्राप्त करना तप कहलाता है। शरीर को बिना उद्देश्य के कष्ट देना तप नहीं कहलाता है। गीता ने और भी स्पष्ट किया है कि विद्वानों, गुरुजनों, वृद्धजनों की सेवा और सम्मान करना, सदाचार पूर्वक जीवन व्यतीत करना और पवित्रता रखना किसी को दुःख या कष्ट न देना किसी की हिंसा न करना यही वास्तविक शारीरिक तप है।

वाणी के तप का उल्लेख करता हुआ गीताकार लिखता है कि 'ऐसे वाक्य बोलना जिससे दूसरे लोग परेशान न हों, सत्य तो बोले किन्तु वह प्रिय हो, अर्थात् अप्रिय सत्य न हों, हमेशा हितकारी और कल्याणकारी वचन हो। वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, अध्ययन करना और अध्ययन किये हुए का निरन्तर अभ्यास करते रहना ही **वाणी का तप** कहलाता है। मन को प्रसन्न रखना, मौन रहना, सौम्यता पूर्वक व्यवहार करना, आत्मसंयम और चित्त शुद्धि अर्थात् मन में पवित्रता रखना मानसिक तप कहलाता है।

वाणी का सदुपयोग करना, इस तरह से न बोलना कि सुननेवालों को कष्ट हो, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि झूठ बोलना या चापलूसी करना। बोलना तो सत्य ही है, किन्तु सत्य इस तरह से

बोलना कि यह दूसरे को अप्रिय या बुरा न लगे। प्रिय सत्य बोलना तथा वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करके उनका अभ्यास करना उनके बारे में लोगों को बताना यही वास्तविक रूप से वाणी का तप है। मन को पवित्र बनाये रखना, अपने आप पर संयम करना, अधिक न बोलना ही मानसिक तप कहलाता है।

त्रिविध दानः–

इसी प्रकार **दान भी तीन** प्रकार के हैं। इस विषय में लिखा है कि 'जो दान देना उचित है' ऐसा समझकर दिया जाता है और जिसको दिया जाता है, उससे दान के बदले में कुछ भी लेने की इच्छा नहीं रखी जाती है तथा देश काल और पात्र को ध्यान में रखकर दिया जाता है वह **सात्विक दान** कहलाता है। जो दान किसी उपकार के बदले में, या जिसको दिया जा रहा है उससे दान के बदले में किसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने की आशा से दिया जाता है, प्रसिद्धि या यश के लिये दिया जाता है, दिखावे के लिये या दु:खी मन से जो दान दिया जाता है वह **राजसिक दान** होता है। जो दान देश काल तथा पात्र का विचार किये बिना तथा जिसको दिया जा रहा है उसका अपमान करके दिया जाता है वह **तामसिक दान** होता है।

दान का फलः–

किसी को आवश्यकता है यह अनुभव करके उसको कुछ देना चाहिये। उसको दान देना मेरा धर्म या कर्तव्य है, दान देकर के भूल जाना, दान के बदले में किसी भी प्रकार का उससे लाभ लेने का मन में विचार न करना, वह प्राप्त करने का अधिकारी है, इस भावना से जो दान दिया जाता है वही **सात्विक दान** कहलाता है। कुछ दान देकर मनुष्य अपने नाम की घोषणा करवाता है, समाचार पत्रों में नाम या फोटो छपवाता है। दान दाताओं की सूची में नाम लिखवाता है तो ऐसा दान **राजसिक दान** कहलाता है। जिसको दान देता है बदले में उससे किसी तरह का काम करवाना चाहता है या उससे लाभ प्राप्त करना चाहता है ऐसे दान को **राजसिक दान** कहते हैं। वह दान का फल प्राप्त करना चाहता है और सांसारिक फल प्राप्त भी कर लेता है ऐसी स्थिति में उसे परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार दान का फल नहीं मिलता है क्योंकि उसने दान नहीं दिया अपितु देने लेने का व्यापार किया, जिसका फल उसको मिल गया। परमात्मा की ओर से सात्विक दान देने वाले को ही फल प्राप्त होता है।

ओम् तत् सत्ः–

इस अध्याय के अन्त में लिखा है कि 'ओम् तत् सत्' यही तीन प्रकार का ब्रह्म का संकेत, निर्देश माना जाता है। प्राचीन काल में ब्रह्म से ही ब्राह्मण ग्रन्थ, वेद तथा यज्ञ निर्मित हुए। इसलिये ब्रह्मवादी लोगों की शास्त्रों के विधान द्वारा बतलाई गई है यज्ञ–दान–तप रूपी क्रियाएं सदा **'ओ३म्'** का उच्चारण करके प्रारम्भ की जाती है। तत् अर्थात् **वह ब्रह्म,** सत् अर्थात् **विद्यमान** है, इसकी सत्ता **अस्तित्व** है। संसार में जो भी कुछ आंखों से दीखता है वह असत्, क्षणभंगुर है, हमेशा रहनेवाला नहीं है, वह ब्रह्म ही सत् हमेशा रहनेवाला नित्य और शाश्वत है इसलिये उसे 'सत्' कहा गया। उसका नाम 'ओम्' है। शास्त्रों में

–शेष पृष्ठ सं. 21 पर

गतांक से आगे–

इस्लाम कैसे फैला

लेखकः– प्रीतम अमृतसरी

(स्वानिह उमरी औरंगजेब)

(लेखक मिस्टर जे. एन. सरकार)

गन्दुम नुमा जौ फरोशी

औरंगजेब के हाथों हिन्दु मंदिरों की तबाही

सिंहासनरूढ़ होने के बारहवें वर्ष (9–4–1669) में औरंगजेब ने .... की ओर एक और कदम उठाया और राज्य भर में यह घोषणा दे दी 'कि काफिरों की समस्त पाठशालायें तथा मन्दिर गिरा दिये जाँय तथा उनके धार्मिक रसूम और धार्मिक शिक्षा बिल्कुल बन्द कर दी जाये।' अब उसका **तबाहकुन** (नाशकारी) हाथ उन बड़े–बड़े मन्दिरों की ओर बढ़ा जिन पर कि लाखों और करोड़ों श्रद्धालु हिन्दुओं का मस्तक प्रेम और भक्ति से प्रतिदिन झुका करता था। उदाहरण के लिये सोमनाथ का द्वितीय मन्दिर पेश किया जा सकता है, जिसे लोभी महमूद गजनवी के आक्रमण के बहद भीमदेव ने बनवाया था। इसी प्रकार काशी का विश्वनाथ का मन्दिर, और मथुरा में केशवराव का वह अदभुत मन्दिर जिस पर एक बुन्देला राजा ने श्रद्धा और भक्ति से 33 लाख रुपया व्यय किया था। प्रान्तों के गवर्नर जब तक बादशाह को इसके सम्बन्ध में तसल्ली न दे सकें कि हमने पूर्णरूप से आपकी आज्ञा का पालन कर दिया है तब तक उनका छुटकारा नहीं हो सकता था।

मथुरा, क्योंकि भगवान कृष्ण का जन्मस्थान है; और भगवान् कृष्ण मुसलमानों के दिमाग में काफिरों के बड़े थे, और साथ ही मथुरा क्योंकि आगरा और देहली के राजपथ पर बसा हुआ है, और बादशाह के मार्ग में आता था इसलिये इस नगर पर सबसे अधिक राज–प्रकोप होता रहा।

औरंगजेब ने एक 'मोमन' अब्दुलगनी को मथुरा के हिन्दुओं का दमन करने के विचार से नियत किया। 14 अक्टूबर 1666 को औरंगजेब को पता लगा कि केशवराव के मन्दिर में पत्थर का एक ऐसा कटहरा है जो कि दारा शिकोह ने भेंट किया हुआ है। बस हुकम हुआ कि उसे झट उखाड़ लाओ।

जनवरी 1670 में रमजान के दिनों में औरंगजेब ने उक्त मन्दिर को नष्ट भ्रष्ट करने तथा नगर का नाम मथुरा से उलट कर इस्लामाबाद कर देने के लिये एक मुहिम्म भेज दी।

उज्जैन नगरी के साथ भी इसी प्रकार का अमानुषिक व्यवहार उचित समझा गया। तमाम सब-डिविजनों और शहरों में ऐसे आदमी रक्खे गये जिनके कर्त्तव्यों में हिन्दु मन्दिरों और अन्य पूजा स्थानों को तबाह व बरवाद करना सबसे अधिक आावश्यक था।

इस हुकम पर किस प्रकार की सख्ती से कार्यवाही होती थी, यह केवल इतनी बात से ही प्रकट हो जाता है कि स्थानिक अधिकारियों ने उड़ीसा तथा बंगाल के दूरवर्त्ति सीमा प्रान्तों में भी मन्दिरों को गिराने और मूर्त्तियों को तोड़ने के उद्देश्य से आदमी नियुक्त करके भेजे।

इसी प्रकार 1680 के जून मास में जयपुर की **वफादार** रियासत की राजधानी अम्बर के मन्दिर भी गिरा दिये गये।

अनुभव तथा वृद्धावस्था ने भी औरंगजेब के हृदय पर से तअस्सुब की कालिमा को न उतारा; क्योंकि बुढ़ापे में भी वह यह पूछता था, कि "सोमनाथ के मन्दिर में पूजा आदि का क्रम जो मैंने आरम्भ में ही बन्द किया था (अब औरंगजेब 80 वर्ष का हो चुका था) वहाँ के स्थानिक राज पुरुषों के प्रमाद से कहीं फिर से प्रचलित तो नहीं हो गया।" फिर वह अपने एक जैनरल को आज्ञा देता है कि 'भाई ! दक्षिण के अमुक मन्दिर को अवश्य पृथिवी के साथ मिला देना क्योंकि मेरी टांगों में अब वहाँ तक पहुँचने की शक्ति नहीं रही।"

हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के ढंग

जजिया:- कुरआन पारा 9 आयत 29 में हजरतमुहम्मद साहिब फरमाते हैं "लड़ो साथ उनके जो कबूल नहीं करते दीनि हक्क, जब तक कि अदा नहीं करते वह जजिया।"

पहले पहल यह जजिया ब्राह्मणों को छोड़कर तमाम हिन्दुओं पर लगाया जाता था। फिर फिरोजशाह तुगलक ने ब्राह्मणों को भी फाँस लिया। तत्पश्चात् अकबर ने बिल्कुल हटा दिया; परन्तु औरंगजेब ने 2 अप्रैल 1670 को फिर से देश भर में जजिया जारी कर दिया। यह सुनते ही हिन्दुओं ने इसके विरूद्ध आन्दोलन किये; और एक दिन यमुना तट पर राजभवन में छज्जे के नीचे एकत्रित होकर कोलाहल किया, परन्तु औरंगजेब ने एक न सुनी। आगामी जुम्मा (शुक्र) के दिन जब वह जामे मस्जिद को नमाज पढ़ने को जा रहा था तो हजारों और लाखों हिन्दु किला से मस्जिद तक जमा हो गए और रास्ते को रोककर प्रार्थना याचना करना शुरू किया कि किसी प्रकार इस बलाए से छुटकारा हो सके; परन्तु, अपनी प्रजा को तसल्ली देने के स्थान में, उसने हुकम दे दिया कि इस जन-समुदाय पर मस्त हाथी छोड़ दो और इन लोगों को पद-दलित कर डालो।

बुर्हानपुर में जहाँ कि 26000 रुपया वार्षिक जजिया हुआ करता था, औरंगजेब के हुकम से एक अत्याचारी कलैक्टर मीर अब्दुल करीम नामी ने 1040000 रुपया इकट्ठा कर दिखाया। उन लोगों पर जो गुजरी होगी, वह कुछ व लोग जानते होंगे या उनका ईश्वर।

इस आफत से मुसलमान लोग बिल्कुल बरी थे। और इसका परिणाम यह निकला कि सैकड़ों

ऐसे हिन्दु जो दुःख और कष्ट से घबराने वाले थे अपना पैतृक धर्म छोड़कर इस्लाम में सम्मिलित होते गये।

एक और जजिया की मुसीबत हिन्दुओं को कुचले जा रही थी और कमजोर दिल व्यक्तियों को इस्लामी गढ़े में गिरने के लिये विवश कर रही थी; दूसरी ओर महसूल था जो कि कई एक हिन्दुओं को प्रलोभन देकर उनके इस्लाम में सम्मिलित होने को तैयार होने का कारण बन रहा था।

10 अप्रैल 1665 को एक हुकम नामा निकला। इससे तमाम उन वस्तुओं पर, जो विक्रयार्थ लाई जाँय, महसूल लगाया गया। यह महसूल उक्त वस्तुओं की मालियत पर मुसलमानों से 2॥ प्रतिशत और हिन्दुओं से 5 प्रतिशत नियत किया गया। तत्पश्चात् 7 मई 1667 को यह महसूल मुसलमानों को बिल्कुल मुआफ कर दिया गया और हिन्दुओं पर पूर्ववत जारी रहा।

पुरस्कार, पारितोषिक, पद तथा अधिकार

समस्त जनता से जो रुपया एकत्रित किया जाता वह देशोन्नति तथा देशसुधार के कामों में उपयुक्त होने के स्थान में इस्लामिक प्रोपेगण्डा पर व्यय होता था। हिन्दुओं को, मुसलमान बनने के लिये रिश्वत दी जाती थी, नकदी पेश की जाती थी, पदों तथा अधिकारों के लालच तथा बन्दिखानों से विमुक्ति इत्यादि के प्रलोभन दिये जाते थे।

औरंगजेब के समय में केवल वही हिन्दु कानूगो बन सकता था जो कि इस्लाम में सम्मिलित हो जाय। पंजाब में अब तक ऐसे खानदान मौजूद हैं जिनके पास उस जमाने के इसी प्रकार के कागज पत्र तथा पेटगट लैटर सम्भाले पड़े हैं जिनमें ऐसे अहकाम का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख मौजूद है।

सन् 1671 में हुकम दिया गया कि बादशाही जमीनों का मुआमला इकट्ठा करने वाले तमाम मुसलमान होने चाहियें। **समस्त तअल्लुकादारों के नाम हुकम भेजे गये कि "अपने तमाम हिन्दु पेशकारों को बर्खाश्त करके रिक्त स्थानों की पूर्त्ति के लिये मुसलमानों को नियुक्त करो।"**

औरंगजेब का अपना चित्र-लेखक लिखता है कि 'कलम की एक ही जुम्बश से उसने (औरंगजेब ने) तमाम हिन्दुओं को बर्खाश्त कर दिया।'

इनके अतिरक्त और भी कई चालें तथा ढंग थे जोकि हिन्दुओं को वैदिक धर्म के उच्चासन से गिराकर इस्लाम की अंधेरी गुफा में पहुँचाने के लिये प्रयोग में लाये गये।

कतिपय हिन्दुओं को जो इस्लाम कबूल करें 'शाही फर्मान्' से हाथी पर चढ़ाकर जलूस के रूप में आगे-2 झंडे और बाजे के साथ नगर के बाजारों में से गुजारा जाता था। **कई एक को चार आने तक प्रतिदिन पैन्शन के रूप में दिये जाते थे।**

सन् 1695 के मार्च में सिवाय राजपूतों के तमाम हिन्दुओं को पालकियों, हाथियों, तथा बढ़िया घोड़ों पर सवारी करने से मना कर दिया गया।

हिन्दुओं के मजहबी मेले भी बन्द कर दिये गये।

-(शेष अगले अंक में)

पिता का पुत्री को उपदेश

लेखकः स्वामी सदानन्द

पिता ने पुत्री को इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ किया।

पुत्री, इस अभागे देश में वेदादि सत्य शास्त्रों का पठन-पाठन छूट गया। ईश्वर पूजा लोप हो गई, ज्यों-2 पश्चिमी सभ्यता जोर पकड़ती जा रही है त्यों-2 नर-नारी पर इसका प्रभाव भी अधिक हो रहा है। गृहस्थी अपने कर्त्तव्य कर्म को भूल गये धर्म में किसी की रुचि न रही **'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित'** अर्थात् जो धर्म को मारता है धर्म उसको मारता है जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है।

पुरुष पत्निव्रत पालन नहीं करते, देवियाँ अज्ञानवश अबला हैं। उनको भी अपने अधिकारों का ज्ञान नही है सब स्वेच्छाचारियों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य के अभाव से दौर्बल्य बढ़ रहा है, नर व नारी रोगों से पीड़ित हैं, यही कारण धर्म हीन, कर्म हीन, ज्ञान हीन, धन हीन तथा आयु हीन होने का है जब तक वेदाज्ञानुसार ऋतुगामी अर्थात संयमी नहीं होते तब तक सुखी भी नहीं होंगे, और सन्तान भी उत्तमाचरणयुक्त चिरंजीव और बलशाली नहीं होगी। भारतवासियों के दु:ख समाप्त नहीं होंगे जब तक ब्रह्मचर्य के व्रत को पालन नहीं करेंगे। हम अपने वंश को हरा भरा नहीं बनाते, बल्कि बालविवाह द्वारा उसकी जड़ों को काट रहे हैं। अनमेल विवाहादि घृणित प्रथाओं के कारण घर-2 में कलह क्लेश है, यही कारण है, कि हममें परस्पर प्रेम का अभाव है। इस अभागे देश में कन्याओं के विवाह के समय, परस्पर आयु तथा गुण कर्म स्वभाव को नहीं देखा जाता है, जिस पुरुष के पास अधिक धन सम्पत्ति हो उसमें चाहे कितने ही अवगुण क्यों न हों, वह रोगी, वृद्ध तथा पुत्र पौत्रों वाला भी हो उसके साथ कन्या का विवाह किया जाता है।

माता पिता अपनी कन्या के भविष्यत् का विचार नहीं करते, कन्या चाहे विवाह के पश्चात् विधवा हो जावे अथवा जीवन पर्यन्त दु:ख भोगे, परन्तु माता पिता का मुख्य लक्ष्य यही होता है, कि हमारी पुत्री धनाढय वर से व्याही जावे। माता पिता भूल जाते हैं कि धन तो इन्द्रिय भोगों का साधन है, परन्तु भोगों के भोगने वाले शक्तिशाली नहीं होते परिणाम यह कि अनेक निर्दोष कन्यायें अपने माता पिता के अज्ञान वश कुकर्मियों और अत्याचारियों के साथ जीवन बिता रही हैं अनेक विधवा होकर वैश्याओं की संख्या को बढ़ाती हुईं अपने आपको तथा दूसरों को धर्म से पतित कर रही हैं। दिन प्रतिदिन गर्भपात किये जाते हैं क्योंकि मन और इन्द्रियों को संयम में रखना एक कड़ी तपस्या है। युवती विधवायें अपने पुनर्विवाह की इच्छा तो रखती हैं परन्तु उनकी इच्छाओं को पद दलित किया जाता है। परिणाम यह कि अनेक अबलायें अन्य मतावलम्बियों के साथ भाग जाती हैं, और अपने सम्बन्धियों को शिक्षा दे जाती

हैं कि ईश्वरीय नियम अटल है जब विवाह के समय आपने हमारे साथ अन्याय किया है और हमारी विपत में भी सहायक नहीं हुए तो हम आपको त्याग कर दूसरों का सहारा लेती हैं, ताकि पुनः गृहस्थी होकर हम पवित्र रह सकें, उस समय माता-पिता ने अपनी पुत्री का सहारा बनाया था वह धन सम्पत्ति विषय भोग की प्रचण्ड अग्नि को शान्त करने के लिये स्वाहा की जाती है, अच्छा होता यदि विवाह समय उन नियमों का उलंघन न किया जाता जो स्मृति कारों ने निर्माण किये थे तो माता-पिता और उनकी पुत्री को बुरे दिन देखने न पड़ते, माता-पिता ने धर्म के उन नियमों का उलंघन कर दिया जो उनकी सन्तान को सुखी बनाने वाले थे धन के लोभ से अन्धे होकर वह खोटे विवाहों के लक्षण और फल भी भूल गये। और अब अपने मन्द भाग्यों का कड़वा फल चख रहे हैं। किन्तु **'अब पछताये होत क्या जो चिड़िया चुग गई खेत'** यह ठीक है कि गाय को हरी घास में ही छोड़ना चाहिये इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि रक्षक भी देखलें कि घास में कहीं सर्प का वास तो नहीं है ताकि गौ की हानि न हो, इसी अज्ञान से कई गृहस्थी अनेक दुःखों के पात्र बने हुए हैं। जहाँ इस देश के अनेक लोग कन्यायों को बेचकर उनके जीवन को कंटकमय बना रहे हैं वहाँ अनेक लोग ऐसे भी हैं, जो वर को उसकी योग्यतानुसार सहस्रों रुपया भेंट करके अपनी कन्यायों को विवाह करते हैं। यह सामाजिक अत्याचार इतना बढ़ रहा है कि कन्यायों को रुपये के अभाव से योग्य वर नहीं मिलते, और अनेक कन्यायें अपने माता पिता की निर्धनता के कारण प्राण घातकर रही हैं अथवा मृत्यु पर्यन्त कुमारियों का जीवन व्यतीत कर रही हैं। बंगाल प्रान्त में अनेक सुशीला कन्यायों ने अपने घात कर लिये क्योंकि माता-पिता निर्धन थे और विवाह के लिये उनके पास द्रव्य नहीं था। पंजाब में गुरुदासपुर के निकट एक नगर में एक देवी ने इसलिये अपना प्राण घात कर लिया था कि उसके माता-पिता के पास उसके विवाहार्थ धन नहीं था। कन्या नहीं चाहती थी कि उसके माता-पिता केवल लोक-लाज के वास्ते उधार लें उसने अपने माता-पिता को बहुतेरा समझाया कि मेरे विवाहार्थ रुपया उधार लेने का यत्न न करें परन्तु माता-पिता ने अपनी कन्या की प्रार्थना पर ध्यान न दिया, परिणाम यह हुआ कि विवाह से पूर्व ही कन्या ने आत्महत्या कर ली, और मरने के पूर्व कागज के एक पुरजे पर यह लिख गई, "मैं ऐसी जगह जा रही हूँ, जहाँ विवाहादि के झमेले नहीं हैं, माता तेरी लाडली अपने पिता को विवाह के निमित्त रुपया उधार लेकर खर्च करने की तकलीफ से बचाने के लिये अकेली परलोक यात्रा के लिये उठ खड़ी हुई है" इस युवती की दर्दनाक मौत का यह वृत्तांत कितना शिक्षाप्रद है, वह लोग जो लोकलाज की खातिर अपने आपको ऋणी बनाकर नष्ट कर लेते हैं, यदि आँखें रखते हैं तो इसे पढ़ें और यदि कान हैं तो इस मरने वाली की आवाज को सुनें जो पुकार-2 कर कह रही हैं "हिन्दुओ लोकलाज की खातिर अपने आपको नष्ट होने से बचाओ।"

प्रायः आजकल के धर्महीन युवक अपनी विद्या प्राप्ति का सारा व्यय अपने श्वसुर से प्राप्त करना चाहते हैं और कई एक तो योरूप यात्रा का खर्च भी उन्हीं से मांग रहे हैं।

धर्म लोप हो गया धर्म का पवित्र स्थान धन ने संभाल लिया। युवक भूल गये हैं जिस प्रकार

उन्होंने अपने श्वसुर से रुपया वसूल किया है समय आने पर उनको भी इसी प्रकार देना पड़ेगा। धन के लोभ से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले यह नहीं विचारते कि गरीब घरों की कन्याओं में नम्रता सुशीलतादि जो उत्तम गुण होते हैं वह धनाढ्यों की कन्याओं में बहुत ही कम होते हैं। धनाढ्य घरों की कन्यायें अपव्ययी होती हैं उनके वस्त्र भूषण रहन सहनादि पर अधिक व्यय करना पड़ता है, परन्तु साधारण घरानों की लड़कियाँ अल्प देने से ही प्रसन्न हो जाती हैं और परमात्मा का धन्यवाद करती हैं।

आबदार मोती समुद्रों की तह ही में ही मिलते हैं, परन्तु सीप और घोंगे जल के तट पर ही मिल जाते हैं। पवित्रात्माओं के दर्शन का सौभाग्य कुटियाओं में ही प्राप्त होता है। इसलिये जो लोग अपने गृहस्थ को सदा सुखी बनाना चाहते हैं वह लोग उन कन्याओं से विवाह करें जो धर्मी घरानों में उत्पन्न हुई हों, न कि उन कन्याओं से जिनका जन्म अत्याचारी धनाढ्य घरानों में हुआ हो। क्योंकि कुटिल और चंचल स्वभाव वाली माताओं की कन्यायें अपनी प्रकृति के अनुसार सुखी नहीं होतीं और न ही वह अपने पतियों की सहधर्मिणी हो सकती हैं। बस जहाँ लेन देन का झमेला हो वहाँ परस्पर प्रेम नहीं होता। न ही उत्तम सन्तान का सौभाग्य प्राप्त होता है। इसलिये सुख की इच्छा रखने वाले गृहस्थी अपनी सन्तान का सम्बन्ध धन के लोभ से न करें, किन्तु गुण कर्म तथा स्वभावानुसार करें। कन्या स्वयं लक्ष्मी रूप हैं, जहाँ इस का पवित्र चरण पड़ता है। वहाँ लक्ष्मी स्वयं निवास का हेतु हो जाती है, हाँ कन्यायें योग्य माताओं की पुत्रियाँ हों जिन्होंने माताओं के दूध के साथ ही धर्म और सुकर्म की शिक्षा ग्रहण की हो, ऐसी कन्यायें जहाँ से भी मिलें ले लेनी चाहिए, शास्त्रकारों का भी यही मत है। विद्या, धन, गुण और स्त्री नीच घरों से भी लेने योग्य है।

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ सं. 15 का शेष–

अनेक स्थानों पर परमात्मा के मुख्य नाम 'ओम्' का उल्लेख है। इसलिये परमात्मा के नाम 'ओ३म्' का उच्चारण करके ही विद्वान् यज्ञ–दान आदि जितने भी शुभकर्म हैं उनको करते हैं। परमात्मा के द्वारा ही वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ, यज्ञ क्या है यह भी परमात्मा के द्वारा ही मनुष्यों ने सीखा है। परमेश्वर से आदि सृष्टि में ज्ञान प्राप्त हुआ है, शुभ कर्म, परोपकार दूसरों के कल्याण कारक कर्म 'यज्ञ' का प्रेरणादायक भी परमेश्वर ही है। यज्ञ दान–तपादि कर्म श्रद्धापूर्वक किये जाते हैं। ये लोक और परलोक में लाभदायक होते हैं तथा अश्रद्धा से किये जाने वाले ये कर्म न जीवित अवस्था में, न मरने पर लाभदायक होते हैं इसलिये इन्हें असत् कहते हैं। इस तरह अध्याय के अन्तिम श्लोक में पुनः श्रद्धा के बारे में उल्लेख किया गया है।

❊❊❊

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

प्रेम का महत्व

रचयिताः कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त

(1)

अन्तर्यामी अखिलेश चराचर-चारी!
जय निर्गुण, सगुण, अनादि, आदि, अविकारी।
पाता है कोई पार न नाथ ! तुम्हारा,
चलता है यह संसार तुम्हीं से सारा॥

(2)

पाकर हे विश्वाधार ! तुम्हारा ही बल,
है निश्चल यह आकाश और यह भूतल।
बहता है नित जल-वायु, अनल जलता है,
द्रुम-गुल्म-लता-दल फूल फूल फलता है॥

(3)

हे ईश ! तुम्हीं से रवि प्रकाश पाता है,
कृश हुआ जलाधर फिर विकास पाता है।
हैं तारे करुणा-बिन्दु तुम्हारे प्यारे,
न्यारे न्यारे हैं खेल तुम्हारे सारे॥

(4)

हम जब तक अपना जन्म धरा पर धारें,
हो जाती हैं उत्पन्न दूध की धारें।
वात्सल्य तुम्हारा जलद दिखा जाते हैं,
मृदु-अंकुर भू-तल भेद निकल आते हैं॥

(5)

गा सके तुम्हारे गुण न वेद भी हारे,
प्रभु ! कोटि कोटि हैं तुम्हें प्रणाम हमारे।
हो तुम से केवल तुम्हीं; कौन तुम सा है?
तुम बीज-रूप हो देव ! जगत् द्रुमसा है॥

(6)

रहती है जन पर सदा तुम्हारी ममता,
क्षमता अद्‌भुत है नहीं कहीं भी समता।
सर्वेश ! शक्ति हो तुम्हीं शक्ति हीनों की,
गहते हो दुख में बाँह तुम्हीं दोनों की॥

(7)

अपने बल का अभिमान जिसे होता है,
क्यों अन्त समय वह मृतक पड़ा सोता है?
हे विधुवर ! हमको प्राण तुम्हीं देते हो,
फिर क्या? जब तुम निज अंश खींच लेते हो॥

(8)

पुष्पांजलि-सम यह प्रेम भावना लीजे,
अंगीकृत कीजे इसे दृष्टि-वर दीजे।
वाणीपति हो हरि ! तुम्हीं, तुम्हीं श्रीपति हो,
अब अधिक कहें क्या, तुम्हीं हमारी गति हो॥

***

महापुरुषों की पुण्यतिथि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	06 जनवरी
सदाशिवराव अमीन	07 जनवरी
लालबहादुर शास्त्री	11 जनवरी
सिपाही बहादुर	13 जनवरी
महादेव गोविन्द रानाडे	16 जनवरी
जे. कृष्णामूर्त्ति	17 जनवरी
खान अब्दुल गफ्फार	20 जनवरी
वीर हेमु कालानी	21 जनवरी
डॉ0 होमीभाभा	24 जनवरी
वालवीर हकीकतराय	24 जनवरी
महात्मा गाँधी	30 जनवरी

14 जनवरी	मकर संक्रान्ति
24 जनवरी	बसन्त पंचमी

महापुरुषों की जयन्ती

महादेवभाई देसाई	06 जनवरी
गुरु गोविन्दसिंह	06 जनवरी
सावित्रीबाई फुले	08 जनवरी
स्वामी विवेकानन्द	12 जनवरी
रामानन्द आचार्य	12 जनवरी
महादेव गोविन्द रानाडे	16 जनवरी
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	23 जनवरी
लाला लाजपतराय	28 जनवरी
विश्वकर्मा	28 जनवरी

09 जनवरी	प्रवासी भारतीय दिवस
13 जनवरी	लोहड़ी
14 जनवरी	भारतीय थल सेना दिवस
26 जनवरी	गणतंत्र दिवस

लोह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी

लेखकः – स्वामी सदानन्द सरस्वती, दयानन्द मठ, दीनानगर

जन्मः– महर्षि दयानन्द 1876 ईस्वी में पंजाब आए। उनके शुभागमन से इस वीर भूमि के निवासियों में चेतना का संचार हुआ। नवजागरण की इस शुभ वेला में सरदार भगवानसिंह के घर पौष मास विक्रम संवत् 1934 की पूर्णिमा को बालक केहरसिंह ने जन्म लिया। यही बालक आगे चलकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के नाम से विख्यात हुआ। लुधियाना जिला ने राष्ट्र को कई विभूतियां दी हैं। राष्ट्रवीर लाजपतराय, यशस्वी दार्शनिक स्वामी दर्शनानन्द तथा स्वाधीनता सेनानी साहित्यकार स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक भी इसी की देन थे। इसी जिला के मोही ग्राम में जन्म लेकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इसे गौरान्वित किया। श्री पं 0 सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार पूर्व कुलपति गुरूकुल कांगड़ी भी इसी जिला के हैं।

परिवारः– बालक केहरसिंह के पूर्वज हल्दी घाटी से आकर यहां बसे थे। उनकी रगों में राजस्थान के शूरवीरों व बलिदानियों का उष्ण रक्त बह रहा था। वीरभूमि पंजाब के वातावरण में पलकर केहरसिंह यथा नाम तथा गुण बन गये। सरदार भगवानसिंह जी की पत्नी का देहान्त हो गया इसलिए केहरसिंह का लालन–पालन उनके ननिहाल कस्बा लताला में हुआ।

आर्यसमाज का परिचयः– लताला में श्री पं0 बिशनदास जी उदासी महात्मा से बैद्यक पढ़ते रहे। इन्हीं पण्डित जी के सत्संग से वैदिक धर्म के संस्कार विचार मिले और इन्हीं महात्मा जी के डेरे पर महात्माओं के सत्संग से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का संकल्प करके विरक्त हो गये।

गृहत्याग और संन्यासः– पिताजी की चाह थी कि वह सेना में जनरल कर्नल बनें परन्तु केहरसिंह वैभवशाली परिवार को त्यागकर संन्यासी बन गये। धर्मशास्त्रों का पठन–पाठन संस्कृत का अभ्यास व उपदेश देते हुए कई वर्ष केवल कौपीनधारी रहे। आर्यसमाज के नेताओं व विद्वानों में सर्वप्रथम आपने ही (1957 विक्रम) संन्यास लिया।

विदेशों मेंः– संन्यास लेकर आप 3–4 वर्ष के लिए दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में धर्म प्रचार करते रहे। इसके लिए किसी सभा संस्था से अपने कोई आर्थिक सहायता नहीं ली। स्वदेश लौटे तो पं0 बिशनदासजी की आज्ञा से विधिवत आर्यसमाज के कार्य में जुट गए। योगाभ्यास, स्वाध्याय, राष्ट्र भाषा प्रचार, ग्राम सुधार, ब्रह्मचर्य, व्यायाम आदि के लिए कई वर्ष रामामण्डी को केन्द्र बनाकर कार्य किया। फिर लुधियाना को केन्द्र बना लिया आपके तप, तेज व त्याग से सारा पंजाब प्रभावित हुआ।

पुनः विदेश यात्राः– 1914 ई0 में आप मारीशस में वेद प्रचार के लिए गये। तीन वर्ष तक आपने वहाँ धर्मोपदेश करते हुए वहाँ के लोगों को संगठन सूत्र में बाँधा। भारत के राष्ट्रीय हितों की वहाँ रक्षा की।

राष्ट्रभाषा का प्रचार किया। जनता का नैतिक उत्थान तथा चरित्र निर्माण किया।

स्वतन्त्रता संग्राम में:– 1916 ई0 में स्वदेश लौटकर आर्यसमाज के कार्य के साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। 1919 ई0 में मार्शल ला के दिनों में पण्डित मदनमोहन मालवीय जी को प्रेरणा पर आपने कांग्रेस को विशेष सहयोग दिया। 1920 ई0 में बर्मा गये। वहाँ धर्म प्रचार के साथ स्वराज्य का प्रचार किया। माण्डले की ईदगाह से 25000 के जनसमूह में स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ स्वराज्य का खुल्लम खुल्ला प्रचार किया। अंग्रेज सरकार की आंख में आप कांटे की भांति चुभने लगे।

काल कोठरी में:– 1930 ई0 में पंजाब कांग्रेस के सब नेता जब जेलों में बन्द थे तो आपने सत्याग्रह को चलाया। डॉ0 मुहम्मद आलम के जेल जाने पर आप कुछ समय के लिए प्रदेश कांग्रेस के प्रधान भी बनाए गये। इस काल में आंध्र प्रदेश के विख्यात कांग्रेसी नेता व स्वतन्त्रता सेनानी पं0 नरेन्द्र (हैदराबाद) इत्यादि को अपने जेल भेजा।

1930 ई0 में लाहौर में कांग्रेस की एक प्रचण्ड सभा से अध्यक्ष पद से एक भाषण देने पर आपको बन्दी बना लिया गया। आपकी गतिविधियों के कारण श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय की सरकार ने तलाशी ली। स्वराज्य संग्राम में केवल आर्यसमाज के उपदेशक विद्यालय (Missionary College) की ही तलाशी ली गई।

सेना में विद्रोह का आरोप:– 1942 ई0 में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे कि आपने भापड़ौदा कस्बा हरियाणा में एक बैठक बुलाकर हरियाणा के चौधरियों से कहा कि सेना में कार्य करने वाले अपने पुत्रों तथा सगे सम्बन्धियों से आप कहें कि सत्याग्रहियों पर गोली मत चलाएं। आपकी हरियाणा यात्रा का अपूर्व प्रभाव पड़ा। सरकार यह सहन न कर सकी। वायसराय के विशेष आदेश से आपको शाही किला लाहौर में बन्द करके अमानुषिक यातनाएं दी गईं। जब आप शाही किला में बन्दी बनाए गए तो पंजाब के गवर्नर के वध का षड्यंत्र करने का भी आरोप लगाया गया।

क्रांतिकारियों को शरण:– आप दस वर्ष श्री मद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्य पद पर आसीन रहे और सैकड़ों योग्य शिष्य आर्यसमाज को प्रदान किये जो उनके चरण चिन्हों पर चलते हुए आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिष्ठाता वेद प्रचार का कार्यभार भी आपके कंधों पर था। तब आपने समय–समय पर कई भूमिगत क्रांतिकारियों को लाहौर में शरण दी।

1938 ई0 में दयानन्द मठ दीनानगर की स्थापना करके इसे मानव केन्द्र बनाया। धर्म प्रचार संस्कृत प्रसार का तो यह केन्द्र ही है। सहस्रों रोगी प्रतिदिन यहाँ धर्मार्थ औषधालय से चिकित्सा करवाते हैं। इस आश्रम में भी देश के स्वतन्त्र होने तक कई क्रांतिकारी देशभक्त भूमिगत होने पर शरण पाते रहे, महात्मा गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के लिए स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सुशिष्य यति जी को विशेष रूप से दयानन्द मठ से ही सत्याग्रह करने का आज्ञा दी थी। इस समय उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज इस मठ के अध्यक्ष थे।

नवाबों से टक्कर:– आपने मालेरकोटला, लोहारू व निजाम हैदराबाद के विरूद्ध सफल मोर्चे लगाकर जन अधिकारों की रक्षा की। आपके सफल व कुशल नेतृत्व से आर्यसमाज को अपूर्व विजय प्राप्त हुई। महात्मा गांधी आदि नेता भी आपकी कार्यक्षमता से अत्यन्त प्रभावित हुए। इन संघर्षों से स्वराज्य आन्दोलन की गति तीव्र हुई।

लहूलुहान:– लुहारू में तो आप पर कुल्हाड़ों व लाठियों से प्राणघातक प्रहार किये गये। आजन्म ब्रह्मचारी 65 वर्ष की आयु में इन भयंकर प्रहारों में भी अड़िग खड़े रहे। आपके सिर पर इन घावों के इक्कीस चिन्ह थे। एक तो बहुत बड़ा निशान दूर से ही दीख जाता था।

विदेशों में राष्ट्रीय दूत:– प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् भी एक बार आप पूर्वी अफ्रीका में आर्यसमाज के प्रचार के लिए गए। देश स्वतन्त्र हुआ तो भारत सरकार की विशेष प्रार्थना पर आप पूर्वी अफ्रीका व मारीशस की यात्रा पर गये। आपने इन देशों में रहने वाले भारतीयों की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक अवस्था का अध्ययन किया और विदेशों में भारतीय हितों की रक्षा के लिए बड़ा काम किया। मारीशस की स्वतन्त्रता के लिए आपने मार्गप्रशस्त करने के लिए बड़ा काम किया।

बहुमुखी प्रतिभा – तेजस्वी व्यक्तित्व:– अस्पृश्यता निवारण व दलितोद्धार के लिए आपने अविस्मरणीय काम किया। स्वदेशी प्रचार, गोरक्षा, राष्ट्रभाषा प्रचार, स्त्री शिक्षा के लिए आपने सारे देश का कई बार भ्रमण किया। पीड़ित सेवा के लिए सदैव अग्रणी रहे। आप कई भाषाओं के विद्वान लेखक, सुवक्ता व इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान थे। आप वर्षों आर्यसमाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के कार्यकर्त्ता प्रधान रहे।

महाप्रयाण:– **'Sound mind in a sound body'** बलवान शरीर में बलवान आत्मा की उक्ति आप पर अक्षरश: चरितार्थ होती है। भीमकाय स्वतन्त्रानन्द इतिहास में वर्णित हनुमान, भीष्म, दयानन्द सरीखे ब्रह्मचारियों की कड़ी में से एक थे 13-4-1955 को बम्बई में आपको निर्वाण प्राप्त हुआ। ❁❁❁

आवश्यक सूचना

मई+जून 2013 व 2014 दो वर्षों का वार्षिक विशेषांक **महाभारत के प्रेरक प्रसंग** 15/- पन्द्रह रूपये डाकव्यय की वी. पी. पी. से भेजा जा रहा है। 'तपोभूमि' के जिन सदस्यों (पाठकों) ने वर्ष दिसम्बर 2014 तक का वार्षिक शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे शीघ्रातिशीघ्र **सत्य प्रकाशन** कार्यालय को जमा करायें अन्यथा अगले माह की पत्रिका व विशेषांक दोनों से वंचित रहना पड़ेगा।

उन पन्द्रह वर्षीय सदस्यों से भी निवेदन है कि वे भी अपना बकाया शुल्क शीघ्र ही जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सहर्ष प्राप्त कर सकें।

आशा और विश्वास है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क जमा करने का कष्ट करेंगे।

–व्यवस्थापक

गतांक से आगे-

।। सृष्टि-प्रलय-संवत्सरादि काल गणना ।।

लेखकः – महात्मा ओम्मुनि, वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्यनगर, रोहतक (हरियाणा)

उपरोक्त तालिका के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि सौरमास और उसके अनुवर्ति चन्द्रमास एवं पौराणिक पंचांगों के अनुसार चन्द्रमास कब प्रारम्भ हुए और आगे कब होंगे। वैदिक रीति से विक्रमी संवत् 2071 दिनांक 02 मार्च 2014 को प्रारम्भ हुआ था, किन्तु पौराणिकों के अनुसार यह दिनांक 31 मार्च 2014 को प्रारम्भ हुआ जोकि वास्तव में चैत्र मास नहीं अपितु वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा थी। इस परिवर्तन के कारण शुक्ल पक्ष के लगभग सभी पर्व/त्यौहार गलत मास में मनाये जाते हैं। प्रत्येक चन्द्रमास में शुक्लपक्ष प्रथम पक्ष और कृष्णपक्ष द्वितीय पक्ष होता है। मानव जीवन में बचपन और जवानी शुक्लपक्ष व प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था कृष्णपक्ष कहलाता है। अमावस्या चन्द्रमा की मृत्यु के समान है। महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत 43वें प्रश्न में यक्ष पूछते हैं कि-**'बार-बार उत्पन्न कौन होता है? युधिष्ठिर का उत्तर था-चन्द्रमा।'** इस उत्तर का अभिप्राय यही है कि **चन्द्रमा** नवजीवन प्राप्त करता है जैसे मृत्यु के पश्चात् आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है, इसलिए शुक्लपक्ष के एकम् के चान्द को **'न्यू मून'** कहा जाता है। जड़-चेतन प्रत्येक वस्तु में यह नियम काम करता है। शास्त्रों के अनुसार-**'जायते अस्ति विपरिणमते वर्धते अप्क्षीयन्ते विनश्यति'** अर्थात् प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है, बढ़ती है, फिर बढ़ना रुक जाता और कुछ समय के बाद ह्रास प्रारम्भ हो जाता है और अन्त में प्रत्येक वस्तु की मृत्यु को प्राप्त होती है अर्थात् समाप्त हो जाती है। यह शाश्वत नियम जड़-चेतन सभी में समान रूप से काम करता है। प्रकृति के नियमों एवं वेद के अनुसार बसन्त ऋतु प्रथम ऋतु है और मधुमास/चैत्र बसन्त ऋतु का प्रथम मास है। प्रत्यक्ष प्रमाणों और साक्षों के आधार पर बसन्त ऋतु आंग्लमास की 20 फरवरी को प्रारम्भ होती है। पूर्व कथन के अनुसार ऋतुओं का निर्माता सूर्य है। अतः चन्द्रमास सौरमास के अनुवर्ती होते हैं और प्रत्येक सौरमास के प्रारम्भ होने के पश्चात् आने वाली शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से उस सौरमास से सम्बन्धित चन्द्रमास प्रारम्भ होते हैं। जैसाकि उपर्युक्त तालिका में दर्शाया गया है। अब अगली तालिका में वेद मन्त्रों के सन्दर्भ में ऋतुओं पर आधारित सौरमासों तथा उनसे सम्बन्धित चन्द्रमास व आंग्लमासों का उल्लेख किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किस मास सम्बन्ध कौनसी ऋतु से है-

ऋतु	वैदिक/सौर मास	यजुर्वेद मंत्र एवं संख्या	चन्द्रमास	आंग्लमास
बसन्त	मधु-माधव	मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू-13/25	चैत्र-वैशाख	मार्च-एप्रेल
ग्रीष्म	शुक्र-शुचि	शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू-14/6	ज्येष्ठ-आषाढ़	मई-जून

वर्षा	नभस्–नभस्य	नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू–14/15	श्रावण–भादों	जुला. अग.
शरद	ईष–ऊर्ज	इषश्चोर्जश्च शारदावृतू–14/16	आश्वि–कार्तिक	सित. अक्टू.
हेमन्त	सहस्–सहस्य	सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू–14/27	मार्गशीर्ष–पौष	नव. दिस.
शिशिर	तपस्–तपस्य	तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू–15/57	माघ–फाल्गुन	जन. फर.

उपरोक्तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस ऋतु का किस–2 सौरमास, चन्द्रमास व आंग्लमास से सम्बन्ध है। अब आगे कौनसा सौरमास आंग्लमास की किस तिथि से प्रारम्भ होता है। यह निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

1.	मधु–	20 फरवरी	2.	माधव–	22 मार्च	3.	शुक्र–	21 एप्रेल
4.	शुचि–	22 मई	5.	नभस्–	22 जून	6.	नभस्य–	23 जुलाई
7.	ईष–	23 अगस्त	8.	ऊर्ज–	23 सितम्बर	9.	सहस्–	23 अक्टूबर
10.	सहस्य–	22 नवम्बर	11.	तपस्–	22 दिसम्बर	12.	तपस्य–	21 जनवरी

ऊपर दर्शायी गई तिथियों का परीक्षण, किसी भी सरकारी या अन्य कलैण्डर जिसमें शक संवत् का उल्लेख हो, किया जा सकता है। शक संवत् कैलेण्डर सौरमासों पर आधारित भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शुद्ध, प्राकृतिक, वेदानुकूल एवं वैज्ञानिक आधार पर निर्मित होने के कारण भी देश में लोकप्रिय नहीं हो सका। इसका एक कारण पौराणिक पंचांगकर्त्ताओं का निजी स्वार्थ भी है। वर्तमान समय में संसार के अधिकतर देशों में ईशवी/ग्रेगीरयन कैलेण्डर व्यवहार में लाया जाता है। इसका मुख्य कारण संसार के अधिकतर देशों में सैकड़ों वर्षों तक अंग्रेजों, फ्रांसिसीयों, पुर्तगाल आदि यूरोपियन ईसाई बहुल देशों का राज्य रहा है। वैसे तो ये ईशवी कैलेण्डर अवैज्ञानिक हैं क्योंकि यह न तो सौरमासों पर और न ही चन्द्रमास पर आधारित हैं, फिर भी इसे दूरदर्शिता से तैयार किया गया है। प्रत्येक चार वर्ष के बाद फरवरी मास को 29 दिन का करने के बाद इस कैलेण्डर की सभी तिथियाँ कई सौ वर्षों तक ठीक समय पर आती हैं। इस कैलेण्डर का प्रारम्भ दोषपूर्ण है, यदि इस कैलेण्डर ईसाइयों धर्मगुरु ग्रेगोरी पोप द्वारा धर्माज्ञा से जारी किया गया था और बाईबिल पर आधारित ईसाई कैलेण्डर है। बाईबिल में लिखा है कि ईश्वर ने छः दिन सृष्टि बनाई और सातवें दिन रविवार को विश्राम किया। इसलिए ग्रहों पर आधारित सात वार व राशियाँ आदि पंचांग के अंग यूनान से आयातित हैं, क्योंकि वैदिक धर्मग्रन्थों में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं है।

अब आगे सृष्टि संवत् एवं मानव व वेदोत्पत्ति संवत् के विषय पर चर्चा करते हैं। गत कई वर्षों से मैंने इस सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे हैं और वे आर्यजगत् की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित भी होते रहते हैं। किन्तु खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि आम पाठक की तो बात की क्या है अधिकतर आर्य विद्वानों की भी इस विषय में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई पड़ती। इसी कारण से आर्यजगत् की पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठ पर अंकित सृष्टि संवत् और वेदोत्पत्ति संवत् आदि में एक रूपता नहीं है। अब

प्रश्न यह उठता है कि क्या सृष्टि संवत् और मानव एवं वेदात्पत्ति संवत् एक हो सकते हैं या ये अलग–2 हैं? इनकी गणना की सही विधि क्या है?

वैदिक धर्मग्रन्थों, भगवान् मनु एवं ऋषिवर दयानन्द के अनुसार सृष्टि गणना की दोनों विधाओं के बारे में इस लेख के प्रथम पृष्ठ पर इसका उल्लेख कर चुके हैं। यथार्थ गणना के अनुसार 20 फरवरी 2014 से सृष्टि संवत् का 1,97,29,49,116 वाँ वर्ष तथा दिनांक 02 मार्च 2014 से मानव व वेदोत्पत्ति संवत् का 1,96,08,53,116 वाँ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। आर्यजगत् के अधिकतर विद्वान् ऋषिवर दयानन्द की पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के संदर्भ में यह मानते हैं कि महर्षि के मन्तव्य के अनुसार सृष्टि संवत् और वेदोत्पत्ति संवत् एक ही हैं। किन्तु वे विद्वत्गण ये भूल जाते हैं कि जहाँ ऋषिवर ने ये लिखा है कि वह वेदोत्पत्ति प्रकरण है न कि सृष्टि उत्पत्ति प्रकरण। ऋषि ने यहाँ दो प्रकार की गणनाओं का उल्लेख किया है और इसके बाद इस सम्बन्ध में ऋषि ने जो शब्द लिखे हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। वे लिखते हैं–**'जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में हो चुके हैं।'** ऋषिवर ने यहाँ पर सृष्टि शब्द का प्रयोग नहीं किया है बल्कि जगत् शब्द लिखा है। जब जगत् शब्द का अर्थ उन्हीं के यजुर्वेद भाष्य के अनुसार देख लेते हैं–

'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।' (यजु. 7/42) इस वेद मंत्र के भाष्य में ऋषि ने जगत् शब्द का अर्थ 'जंगम् व प्राणी' किया है तथा यजुर्वेद के 40वें अध्याय के प्रथम मंत्र, **'ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्याम् जगत्।'** इस मंत्र के भाष्य में **जगत्** शब्द का अर्थ, **'चरप्राणी'** किया है। अब विचारने की बात यह है कि वेदज्ञान न तो जड़ पदार्थों को दिया जाता है और न ही पशु–पक्षियों को। सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया में मनुष्यों की उत्पत्ति जलचर, थलचर और नभचर अर्थात्–पशु–पक्षियों आदि प्राणियों के बाद में होती है तथा वेदज्ञान केवल ऋषिश्रेणी के श्रेष्ठ मनुष्यों को ही दिया जाता है। प्रलयकाल रूपी रात्रि समाप्त होते ही, **'हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे भूतस्य जात......।'** (यजु. 13/4) हिरण्यगर्भ रूपी विशाल अण्डा फट जाता है और उसमें निर्मित सभी लोक–लोकान्तर अपनी–2 कक्षाओं में स्थित होकर घूमने लगते हैं। उसी समय सृष्टि उत्पत्ति के साथ–2 सृष्टि संवत् भी प्रारम्भ हो जाता है और अब सृष्टि को प्रारम्भ हुए 1,97,29,49,115 वर्ष बीत चुके हैं और दिनांक 20 फरवरी 1024 से सृष्टि संवत् का 1,97,29,49,116 वां वर्ष हो गया है।

जब सृष्टि उत्पन्न हुई तब यह पृथिवी भी सूर्य की तरह आग का गोला थी। जिस प्रकार लोहे का गोला जब तक आग की भट्टी में पड़ा रहता है तब तक अंगारे के समान लाल बना रहता है और भट्टी से बाहर निकालने के उपरान्त वायु और जलकणों के स्पर्श से धीरे–2 ठण्डा होने लगता है। उसी प्रकार अग्निमय पृथिवी भी आकाशीय जलकणों के सम्पर्क में लगातार आते रहने से ठण्डी होने लगी और यह प्रक्रिया निरन्तर लाखों वर्षों तक चलती रही–

'ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विद्‌धद्विश्वस्य मिषतो वशी।। '

ऋग्वेद के इन मंत्रों के अनुसार वाष्पकणों के रूप में सर्वप्रथम आकाश में महासमुद्र उत्पन्न हुआ। पृथिवी ज्यो-2 सूर्य के चारों ओर घूमती रही, आकाशीय जलकणों व वायु के सम्पर्क में लगातार आते रहने से धीरे-2 ठण्डी होने लगी और इस प्रक्रिया में पृथिवी की ऊपरी सतह पर परिवर्तन होने लगे। कुछ भाग सिकुड़कर ऊपर उभरने लगे और कुछ भाग गहरे नीचे धंस गये। लगातार वर्षा होते रहने से पानी का बहाव नीचे की ओर होने लगा। निरन्तर पानी के बहाव के कारण पृथिवी पर नदियाँ बन गई और नीचे धंसे हुए भाग विशाल जलराशि के रूप में समुद्र बन गये। पृथिवी पर समुद्र बनने के पश्चात् दिन-रात, पक्ष, मास व वर्ष आदि का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् सर्वप्रथमं समुद्र में जलीय वनस्पतियों की उत्पत्ति और फिर मछली आदि अन्य जलीय प्राणी उत्पन्न हुए।

धीरे-2 वर्षा का क्रम घटने लगता है और पृथिवी पर पेड़-पौधे, औषधी-वनस्पति, फल-फूल व अन्नादि उत्पन्न होने लगते हैं। पृथिवी के हरी-भरी होने के बाद सभी तरह के पशु व पक्षी उत्पन्न हुए और अन्त में श्रेष्ठ प्राणी के रूप मानव का जन्म हुआ और जब मानव का जन्म हुआ उस समय सृष्टिकाल की सन्धिकाल के लगभग 1,20,96,000 वर्ष बीत चुके थे एवं 8,64,000 वर्ष शेष थे। (दोनों संवतों का अन्तर 1,97,29,49,116-1,96,08,53,116 = 1,20,96,000 यही बात स्पष्ट करता है) तब परमपिता परमात्मा पृथिवी के विशेष स्थानों पर कृत्रिम गर्भाशयों का निर्माण करके युवा स्त्री व पुरुषों को उत्पन्न करते हैं। ऋषिवर दयानन्द जी महाराज ने मानव की उत्पत्ति स्थल त्रिविष्टिप/तिब्बत को माना है। विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, कमल से ब्रह्मा जी प्रगट हुए उन्होंने आगे सृष्टि की रचना की। विष्णु पुराण में यह एक अलंकारिक वर्णन है। ईश्वर का एक नाम विष्णु भी है, क्योंकि वे अपनी सर्वव्यापकता से सम्पूर्ण सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं। तिब्बत क्षेत्र में मानसरोवर नामक झील में विशाल कमल के फूल उत्पन्न हुए और इन विशाल कमल रूपी गर्भाशयों में ब्रह्माजी एवं अन्य ऋषिगण उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी प्रथम मानव थे इसीलिए उन्हें प्रजापिता भी कहा जाता है। सम्भवतः मानसरोवर झील का नामकरण भी मानव की उत्पत्ति के कारण ही पड़ा हो। ब्रह्माजी से मरीचि और मरीचि से कश्यप प्रजापति उत्पन्न हुए और प्रजापति कश्यप की आठ पत्नियों में अदिति से देव, दिति से दानव व दनु से दैत्य आदि उत्पन्न हुए। जब प्रथम ब्रह्माजी आदि मानव उत्पन्न हुए तब बसन्त ऋतु प्रारम्भ हो चुकी थी और ये दिन चैत्रमास शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमीं तक बासन्ती नवरात्रे कहलाते हैं अर्थात् चन्द्रमास के प्रथम पक्ष शुक्ल की एकम् से मानव की उत्पत्ति मानी जाती है और उसी दिन से मानव एवं वेदोत्पत्ति संवत् प्रारम्भ हो गया था। अब मानव एवं वेदोत्पत्ति संवत् के 1,96,08,53,115 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं और दिनांक 02-03-2014 से 1,96,08,53,116 वाँ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। इस तिथि से विक्रमी संवत् का 2071 वाँ वर्ष भी प्रारम्भ हुआ है। निम्न तालिका में उपर्युक्त कालगणना के आंकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

अप्रिय अवस्थाओं से निकलने का मार्ग

लेखकः दयाचन्द्र गोयलीय

अतएव निर्धनता और समय और अवकाश का न मिलना जिनको तुम आपत्तियाँ समझते हो, वे आपत्तियाँ नहीं हैं और यदि वे तुम्हारी उन्नति में बाधक होती हैं, तो यह तुम्हारा ही दोष है। तुमने अपनी ही कमजोरियों के कारण उनको ऐसा बना दिया है। जो दोष तुम उनमें पाते हो, वह यथार्थ में तुम्हीं में है। इस बात को भली भाँति समझ लो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। जिस प्रकार के ढाँचे में तुम अपने मन को ढालोगे, वैसा ही तुम्हारा भाग्य बनेगा और ज्यों–2 तुम इस बात को समझते और अनुभव करते जाओगे, त्यों–2 तुम्हारे दुःख सुख रूप होते जाएँगे, अर्थात् जिन्हें तुम दुःख और विपत्ति के कारण समझ रहे हो, वे सुख और आनन्द के कारण हो जाएँगे। उस समय तुम्हें अपनी निर्धनता से आशा, साहस और संतोष की प्राप्ति होगी और समयाभाव के कारण तुम में काम करने की तेजी और अवसर को हाथ से न देने की बुद्धि आ जाएगी। जिस प्रकार मैली से मैली जमीन में सुन्दर और सुगन्धित पुष्प पैदा होते हैं, उसी प्रकार निर्धनता की अन्धकारमय भूमि में दयालुता के अनुपम और मनोहर पुष्प बढ़ते और खिलते हैं। जहाँ पर आपत्तियों का सामना करना पड़ता है और अप्रिय अवस्थाओं को जय करना होता है, वहीं पर भलाई और ने की प्रकट होती है और अपने गुण दिखलाती है।

सम्भव है कि तुम किसी दुष्ट और निर्दयी मालिक के नौकर हो। वह तुम से असद् व्यवहार करता हो, परन्तु तुम इस बात को भी अपनी शिक्षा के लिए आवश्यक समझो। मालिक तुमसे असह्य व्यवहार करता है, परन्तु तुम उसके साथ सभ्यता से व्यवहार करो। सदा संतोष और इन्द्रिय–निग्रह का अभ्यास करो। जो हानि तुम्हें पहुँची है, उससे यह लाभ उठाओ कि अपने में मानसिक और आत्मिक शक्ति प्राप्त करो। इस प्रकार चुपके–2 तुम अपने मालिक के लिए एक आदर्श बन जाओगे और उस पर तुम्हारा प्रभाव पड़ने लगेगा। वह अपने असद् व्यवहार पर स्वयं लज्जित होगा और साथ ही तुम में वह उच्च कोटि का आत्मिक बल भी बढ़ जाएगा जिसके कारण तुम्हारे मन में अच्छे विचार उत्पन्न होंगे। भूल कर भी कभी तुम यह शिकायत न करो कि तुम दास हो, किन्तु सच्चरित्रता और सद्व्यवहार से अपने में उच्च विचार उत्पन्न करो। दूसरों के दास होने की शिकायत करने से पहले, तुम यह समझ लो कि तुम स्वयं अपनी कुवासनाओं के तो दास नहीं हो? अपने भीतर देखो, खूब सोचो और विचारो और अपने दोषों के ढूँढ़ने में तनिक भी संकोच मत करो। कठोर हृदय होकर अपने दोषों को देखो। सम्भव है कि तुम्हें अपने ही भीतर नीच और कुत्सित विचार मिल जाएँ, तुम्हारे ही प्रतिदिन के जीवन और व्यवहार में बुरी आदतें पाई जाएँ। इन नीच विचारों और आदतों को छोड़ दो। अपनी इन्द्रियों के दास मत बनो। बस फिर तुम्हें कोई

दास नहीं बना सकता। तुम उसी समय तक दूसरों के दास हो, जब तक कि तुम स्वयं अपने दास बने हुए हो। तुम अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करक लो, फिर तुम्हारी सारी बुरी अवस्थाएँ जाती रहेंगी और तुम्हारी हर एक कठिनाई दूर हो जाएगी।

कभी इस बात की शिकायत मत करो कि धनवान लोग तुम्हें दु:ख देते हैं। क्या तुम्हें इस बात का पूरा-2 विश्वास है कि यदि तुम्हारे पास द्रव्य होता तो तुम किसी को दु:ख न देते याद रक्खो, यह संसार का अटल और अकाट्य नियम है कि जो आज किसी को दु:ख देता है, वह कल को अवश्य दु:ख पाएगा। चाहे राजा हो या रंक, इस नियम से कोई भी नहीं बच सकता है। सम्भव है कि तुम अपने पूर्व जन्म में धनाढ्य होगे और दूसरों को पीड़ा देते होगे, उसी का यह प्रतिफल भोग रहे हो। अतएव विश्वास और दृढ़ता का अभ्यास करो। सदा इस बात का स्मरण रक्खो कि जो कुछ होता है कर्मानुसार होता है। जैसा मनुष्य काम करता है वैसा ही फल पाता है। कोई किसी को दु:ख या सुख नहीं देता। मनुष्य स्वयं अपने दु:ख सुख का कर्त्ता है। जैसे उसके विचार होते हैं, वैसा ही उसकी बाह्यावस्था भी होती है। अतएव मनुष्य को उचित है कि अपने आंतरिक दोषों के ढूँढ़ने में खूब सख्ती से काम ले। इस बात में उदासीनता करने की बराबर आत्मा के लिए संसार में कोई भी हानिकारक वस्तु नहीं है। जो लोग अपने दोषों के ढूँढ़ने में बेपरवाही करते हैं, वे अपनी आत्मा को दिन-2 नीच और पतित बनाते हैं। अतएव जिस तरह हो सके अपने दोषों को ढूँढ़ो। दूसरों को बुरा भला कहना छोड़ दो। अपने को बुरा कहो। निरन्तर इस बात का ध्यान रक्खो कि तुम्हारे सम्पूर्ण कार्य और विचार विशुद्ध, पवित्र और निर्दोष हों। यदि ऐसा नहीं है तो कदापि उनकी प्रशंसा मत करो। बराबर निन्दा करते रहो। ऐसा करने से तुम्हारी नेकी और भलाई की नींव दृढ़ हो जाएगी और सुख की सामग्री तुम्हें स्वत: उचित समय पर मिल जाएगी।

निर्धनता अथवा अन्य किसी अप्रिय अवस्था को सदा के लिए दूर करने का सबसे सीधा और सरल मार्ग यह है कि हम अपने भीतर से स्वार्थयुक्त वासनाओं को निकाल डालें, कारण कि बाह्य अवस्थाएँ अंतरंग वासनाओं की प्रतिरूप हैं और जब तक अंतरंग वासनाएँ रहेंगी, तब तक बाह्य अवस्थाओं में परिवर्तन नहीं हो सकता। सच्ची दौलत प्राप्त करने का यही मार्ग है कि अपने भीतर नेकी और भलाई के विचार पैदा करो। यदि तुम्हारे मन में सच्ची भलाई के विचार नहीं हैं, तो न तो तुम सुखी हो सकते हो और न शक्ति प्राप्त कर सकते हो। मैं जानता हूँ कि ऐसे मनुष्य बहुत सा रुपया कमा लेते हैं कि जिनमें तनिक भी भलाई नहीं है और न जिन्हें भला बनने की इच्छा है, परन्तु याद रक्खो ऐसा धन सच्चा धन नहीं है। वह थोड़े दिनों का ही होता है। महात्मा दाऊद का कथन है कि "मैं मूर्खों और दुष्टों की बढ़ती देखकर बड़ा विस्मित हुआ। मैंने बड़ा पश्चात्ताप किया कि हम व्यर्थ में व्रत उपवास और पूजा भक्ति करते हैं, परन्तु जब मैं ईश्वर के दरबार में गया तो वहाँ मुझे उसका संतोष-जनक उत्तर मिल गया और असली भेद मालूम हो गया। दुष्टों की वृद्धि ने ही दाऊद को ईश्वर के दरबार में भेजा था। वहाँ उसे सब हाल मालूम हो गया। इसी प्रकार तुम भी उस पवित्र मन्दिर में प्रवेश करो। यह मन्दिर तुम्हारे ही भीतर

मौजूद है। यह आत्मा की सर्वोच्च अवस्था है। इस अवस्था में सम्पूर्ण मानसिक विकार और क्षणिक विचार नष्ट हो जाते हैं और ईश्वर-दर्शन होने लगता है। इसका नाम परमात्मावस्था है। यही ईश्वर का पवित्र मन्दिर है। जब तुम बहुत कुछ उद्योग करने पर अपनी इच्छाओं का विरोध करके और कषायों का क्षय करके इस पवित्र मन्दिर के द्वार पर आओगे, तब तुम को मनुष्य के विचार और उद्योग का परिणाम अच्छा व बुरा, स्पष्ट रूप से प्रगट हो जाएगा। फिर जब तुम किसी दुष्ट मनुष्य को बाह्य में धन संचय करते देखोगे, तो तुम्हारा श्रद्धान तनिक भी कम न होगा, कारण कि तुम जान जाओगे कि वह मनुष्य एक दिन अवश्य गरीब होगा और दु:ख उठाएगा। उसकी बढ़ती थोड़े दिनों के लिए ही है। जिस धनवान् मनुष्य में भलाई नहीं है, वह यथार्थ में निर्धन है। जिस प्रकार नदी का पानी बह कर समुद्र में गिरता है, उसी प्रकार वह भी यद्यपि धनवान् है, परन्तु विपत्ति और निर्धनता की ओर जा रहा है और चाहे वह मरते समय तक धनवान ही रहे तो भी उसे अपने दुष्कर्मों का प्रतिफल भोगने के लिए अवश्य वापिस आना पड़ेगा और जब तक कि वह बहुत कुछ दु:ख और अनुभव के बाद अपनी आंतरिक निर्धनता पर विजय प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक जितनी बार वह धनी होगा, उतनी बार उसे निर्धन होना पड़ेगा। परन्तु इसके विपरीत जो मनुष्य वाह्य में निर्धन है, परन्तु अंतरंग में धनवान् है, अर्थात् जिसके विचार उत्तम हैं, मन शुद्ध है, वह यथार्थ में धनवान् है और दीन होने पर भी वह सुख और ऐश्वर्य की ओर जा रहा है और अपरिमित हर्ष और आनन्द उसके लिए वाट जोह रहे हैं।

यदि तुम यथार्थ में स्थाई रूप से सुखी होना चाहते हो, तो पहले तुम्हें नेक और धर्मात्मा बनना चाहिये। इसके बिना सुख की इच्छा करना, रात दिन उसकी चिन्ता करना और उसके लिए उत्सुक रहना मूर्खता है। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारी आत्मा गिर जाएगी। तुम्हें कदापि सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। अपने को उन्नत अवस्था पर पहुँचाने का उद्योग करो। परोपकार और नि:स्वार्थ सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बनाओ और सदा उत्तम, नित्य, अविनाशिक भलाई को ग्रहण करने का प्रयत्न करो।

तुम कहते हो कि हमें अपने लिए धन की आवश्यकता नहीं है, किन्तु तुम्हारा अभिप्राय धन द्वारा दूसरों को लाभ पहुँचाने का है। यदि वास्तव में तुम्हारा यही अभिप्राय है, तो तुम्हें धन अवश्य मिलेगा। परन्तु याद रक्खो कि धन पाकर दृढ़ और नि:स्वार्थ बने रहना। अपने को उसका स्वामी न समझ कर केवल रक्षक या गुमाश्ता समझना। देखो, अपनी नियत को अच्छी तरह समझ लो; कारण कि प्राय: देखा गया है कि मनुष्य कहते तो यह हैं कि यदि हमारे पास धन हो तो हम सब परोपकार में लगा दें, परन्तु उनकी आंतरिक इच्छा सदैव यह बनी रहती है कि लोग हमसे प्रसन्न रहें, हमारी प्रशंसा करें और सुधारकों या परोपकारियों में हमारी गणना हो जाए। यदि तुम अपने थोड़े से धन से जो तुम्हारे पास है दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा सकते हो, तो जब तुम्हारे पास अधिक धन हो जाएगा, तो तुम और भी अधिक स्वार्थी बन जाओगे और यदि मान भी लिया जाए कि तुम अपने रुपये से दूसरों को लाभ पहुँचाने का उद्योग करोगे तो वह केवल प्रतिष्ठा और नामवरी के लिए। अतएव यदि वास्तव में तुम्हारी इच्छा दूसरों को लाभ

पहुँचाने की है, तो तुम्हें इसके लिए धन दौलत की बाट नहीं देखनी चाहिये। तुम अब भी चाहे जिस हालत में हो दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हो।

यदि तुम निश्चय से ऐसे निःस्वार्थी और परोपकारी हो जैसे कि तुम अपने को समझते हो, तो तुम इस समय भी स्वयं हानि उठा कर दूसरों का भला कर सकते हो। चाहे तुम कितने ही निर्धन हो, तो भी तुम में स्वार्थ की आहुति देने की शक्ति है। तुम अवश्य दूसरों के निमित्त कुछ न कुछ अर्पण कर सकते हो। जिस मनुष्य के हृदय में परोपकार का अंकुर विद्यमान है, जो सच्चे दिल से दूसरों का भला चाहता है वह रुपये पैसे की वाट नहीं देखता। वह रुपये के स्थान में अपने जीवन को अर्पण कर देता है। वह अपने मन में स्वार्थ, द्वेष, कषाय और वासना को निकाल कर अपने और पराये का भेद भाव दूर करके मित्र और शत्रु सब के साथ समान व्यवहार करता है, सब का भला चाहता है और सब को लाभ पहुँचाता है।

जिस प्रकार कार्य कारण का सम्बन्ध है, उसी प्रकार सुख और ऐश्वर्य का आंतरिक भलाई से और निर्धनता और निर्बलता का आंतरिक बुराई से सम्बन्ध है। अर्थात् जिस प्रकार कारण के अनुसार कार्य होता है, उसी प्रकार यदि तुम्हारे अंतिरिक्त विचार अच्छे हैं तो तुम्हें सुख और ऐश्वर्य मिलेगा और यदि बुरे और गंदे हैं तो दुःख और संताप मिलेगा।

रुपया सच्ची दौलत नहीं है और न पद व प्रतिष्ठा ही सच्ची दौलत है। अतएव केवल इन पर भरोसा करना ऐसी चिकनी और ढालू जमीन पर खड़ा होना है कि जहाँ से पैर फिसलने का भय है।

तुम्हारी असली दौलत तुम्हारी नेकी है और तुम्हारी असली ताकत उस नेकी का ठीक-ठीक काम में लाना है। अर्थात् जितनी नेकी तुम दूसरों के साथ करोगे, उतनी ही अधिक तुम्हारी ताकत समझी जाएगी। अपने हृदय को शुद्ध कर लो, अपने दिल को साफ कर लो, तुम्हारा जीवन स्वतः सुधर जाएगा। विषय-वासना, राग द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, माया, अहंकार, स्वार्थ और दुराग्रह, ये सब निर्बलता और निर्धनता के चिन्ह हैं। इनके विपरीत प्रेम, पवित्रता, नम्रता, सभ्यता, शील, संतोष, दया, अनुकम्पा, उदारता, निःस्वार्थता इंद्रियनिग्रह और आत्म-संयम ये सब धन और बल के सूचक हैं।

जब मनुष्य निर्धनता और निर्बलता के कारणों को दूर कर देता है, तो उसके भीतर स्वमेव एक अक्षय और अजय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है और जो मनुष्य उच्च कोटि का नेक और धर्मात्मा बन जाता है वह सम्पूर्ण संसार को अपने आधीन कर लेता है।

-(शेष अगले अंक में)

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका मंगाने हेतु

एक वर्ष के लिए 150/- एक सौ पचास रुपये वार्षिक शुल्क,

पन्द्रह वर्ष के लिए 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये

आज ही भेजिये।

उन्होंने कहा कि आज वैदिक संस्कृति की ओर सारा संसार उन्मुख हो रहा है। हमारे प्रयासों से योग की चतुर्दिक् जो ज्योति जगी थी, और उससे लोगों को भरपूर लाभ हुआ। समाज ने योग की महत्ता को स्वीकार किया। उसी का परिणाम यह था कि जब माननीय प्रधानमंत्री ने अन्तराष्ट्रीय मंच पर योग दिवस मनाने का प्रस्ताव रखा, तो 177 देशों ने सर्वसम्मति से उसे स्वीकार कर लिया। यह भारत की बहुत बड़ी सांस्कृतिक विजय है। इसी प्रकार उन्होंने कहा कि अब हमें सारे संसार में वेद को स्थापित करना है। सारा संसार वेद को सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ स्वीकार करे, यही हमारे जीवन का अब उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि हम लोग लार्ड मेकाले द्वारा स्थापित शिक्षा प्रणाली को स्वीकार भी कर रहे हैं और उससे हो रही हानियों से उसे गाली भी दे रहे हैं। पर अपना देश होते हुए भी हम उसे विरूद्ध कुछ भी करने में असमर्थ हैं। स्वामी जी ने कहा अब हम ऐसी स्थिति नहीं रहने देंगे। भारत के प्राचीन काल में 7 लाख गुरुकुल बताए जाते हैं। हम पुनः 7 लाख गुरुकुलों को स्थापित करेंगे। इसके लिए प्रयास भी प्रारम्भ कर दिए हैं। अन्त में स्वामी जी ने नगरपालिका अध्यक्ष मनीषा गुप्ता का भी वेदमन्दिर में मार्ग पक्का करवाने के लिए धन्यवाद दिया। बिलासपुर विश्वविद्यालय (मध्यप्रदेश) के कुलपति ने भी स्वामी जी के कहने पर वेदमन्दिर को 1 लाख रुपये की सहायता देने की घोषणा की। दिल्ली से पधारे श्री रविन्द्र जी ने भी 5 लाख रुपये का सहयोग वेदमन्दिर को देने की घोषणा की। प्रज्ञा प्रकाशन के स्वामी श्री राजेश जी गोयल और श्री अरुण मित्तल जी ने भी 5 लाख के सहयोग देने की घोषणा की। सत्य प्रकाशन के साहित्य को भी छापने का आश्वासन दिया। स्वामी जी महाराज ने इन सभी दान दाताओं को आशीर्वाद प्रदान किया। इस अवसर पर माननीय श्री पदमसेन जी गुप्ता करनाल, श्री अनूप चौधरी जिला पंचायत अध्यक्ष मथुरा, श्री त्रिलोकचन्द जी शर्मा गुड़गाँव, श्री दिनेश नागपाल जी गुड़गाँव, श्री आनन्द स्वरूप जी केला आनन्दधाम वृन्दावन, श्री रविकान्त गर्ग पूर्व मंत्री भारत सरकार आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति पधारे। श्रीमती प्रीति चौधरी प्रधानाचार्या आर.सी.ए. महाविद्यालय मथुरा ने 1 लाख रुपये का चैक देकर पतंजलि पीठ हरिद्वार की सदस्यता स्वामी जी की उपस्थिति में भेंट की। वेद मन्दिर में स्थापित नवनिर्मित गौशाला का उद्घाटन भी स्वामी जी ने श्री दिनेशचन्द्र जी और महेशचन्द्र जी की उपस्थिति में किया।

25 दिसम्बर को चतुर्वेद पारायण यज्ञ का निर्विघ्न समापन हुआ। उसमें सभी यजमानों ने पूर्णनिष्ठा के साथ अपनी पूर्णाहुति दी। मुख्य यजमान श्री कृष्णवीर जी शर्मा के पुत्र श्री यज्ञेश शर्मा ने सभी विद्वानों को वस्त्र और दक्षिणा देकर सम्मनित किया। इस अवसर पर गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के ब्रह्मचारियों ने संगीत के माध्यम से ईश्वर भक्ति व ऋषि महिमा के गीतों को प्रस्तुत किया। कार्यक्रम में मथुरा जनपद के याज्ञिकों के अतिरिक्त अलीगढ़, बुलन्दशहर, गाजियाबाद, मेरठ, कानपुर, सहारनपुर, बागपत, दिल्ली, फरीदाबाद, गुड़गांव, रेवाड़ी, नारनौल, अलवर, भरतपुर, भिण्ड, आगरा, इटावा, कन्नौज, औरैया, मैनपुरी, एटा, फिरोजाबाद, शाहजहाँपुर, बदायूँ, बरेली, मुरादाबाद आदि स्थानों से पधारे। कार्यक्रम के अन्त में आर्यवीर दल कैमथल द्वारा आयोजित परीक्षाओं में विशेष योग्यता से उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों का पुरुस्कार वितरण परीक्षा संयोजक पंकज आर्य के द्वारा किया गया। इस अवसर पर गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के प्राचार्य हरिप्रकाश जी की समर्पित सेवाओं को देखते हुए आर्यवीर दल उत्तरप्रदेश की ओर से एक अभिनन्दन पत्र भी भेंट किया गया। ❁❁❁

'तपोभूमि' जनवरी 2015 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

यज्ञशाला के उद्‌घाटन के अवसर पर पधारे पूज्य स्वामी रामदेव जी महाराज का स्वागत करते हुये श्री कृष्णवीर जी शर्मा, नगरपालिका अध्यक्ष श्रीमती मनीषा गुप्ता एवं जिला पंचायत अध्यक्ष श्री अनूप चौधरी

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600